मानव मन्दिर

वैसाखी विशेषांक

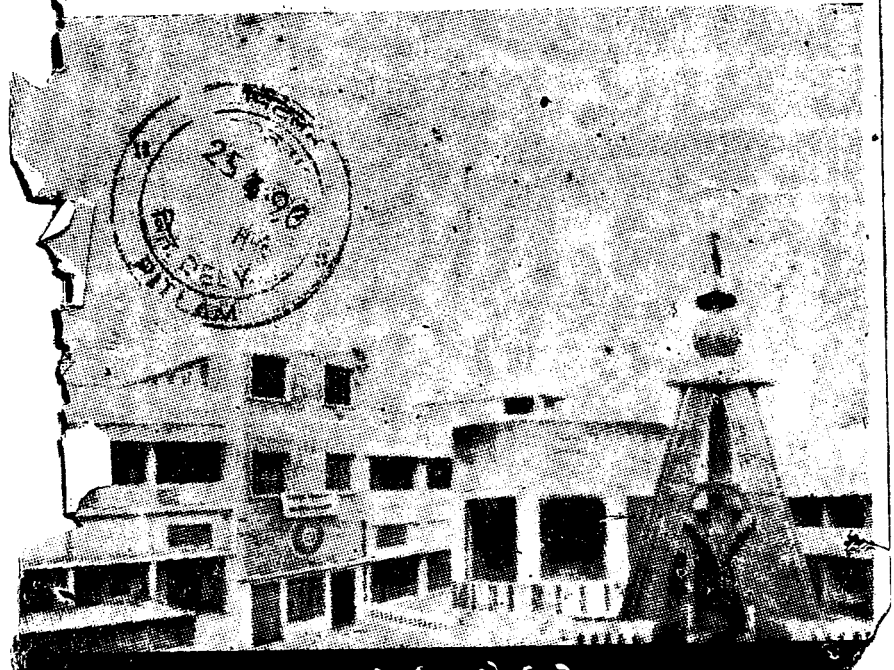

फ़कीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट

सुतेहरी रोड, होशियारपुर

FORM 1

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Hoshiarpur
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the TOTAL	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10-5-95

Signature of Publisher

Printed and Published by : Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur. for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 21-5-1995 को होगा ।

Data Dayal Mehrishi
Shiv Brat Lal Ji Maharaj

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

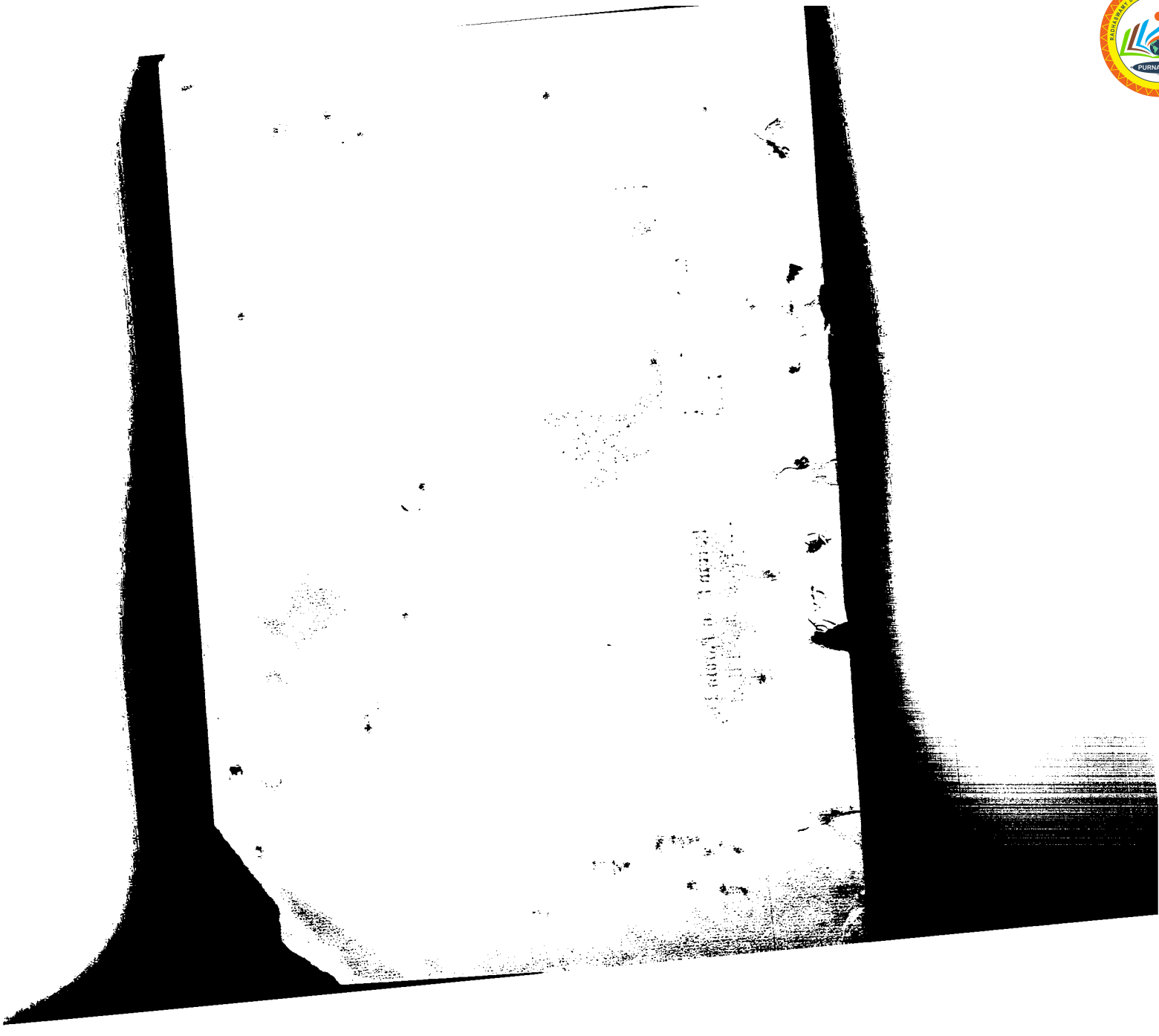

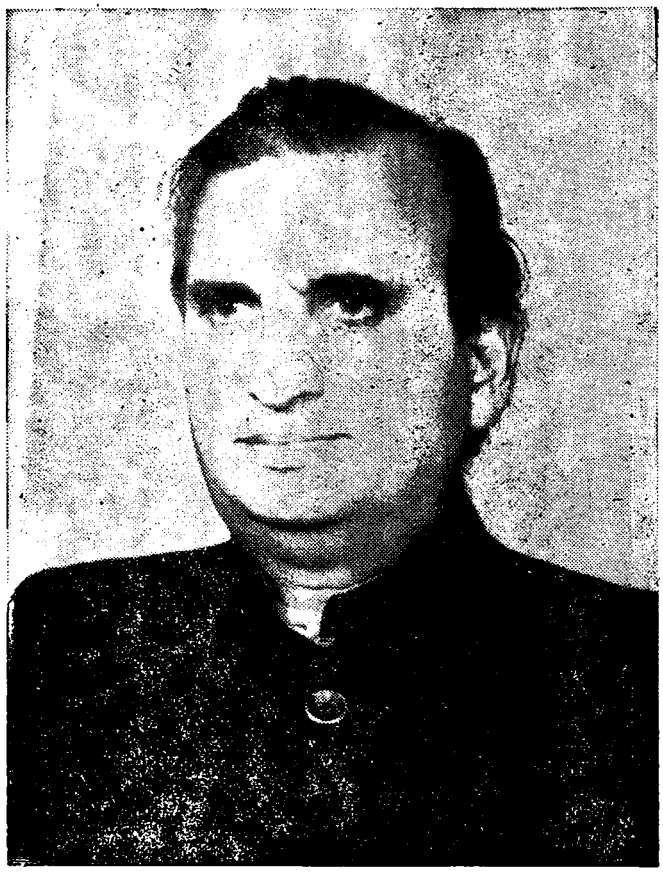

Param Sant Manav Dayal Dr. I. C. Sharma Ji
Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN
मनुष्य बनो

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

| वर्ष 16 | मंगलवार, 10 अप्रैल 1990 | संख्य |

लक्ष्य एक हो

परमसन्त हजूर दाता दयाल जी महाराज

मनुष्य का हृदय समस्त गुणों का भण्डार है। इसमें अनगिनत शक्तियों के भण्डार भरे पड़े हैं, परन्तु अज्ञानता के कारण, इसे इन शक्तियों के होने का भान नहीं होता। वायु के झोंके से झकोले खाये हुए पानी की सतह पर किनारे के वृक्षों की छाया भला किसीको दिखाई देती है? नहीं दिखाई देती ! इसी तरह चंचल मन में, स्वरूप का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता और इससे जीवन-चक्र अपूर्ण रह जाता है। न तो हम अपने लक्ष्य या मंज़िल की ओर बढ़ते हैं और न ही हमारी विचार-शक्ति केन्द्र की ओर रुझान कर पाती है। हम ऊटपटांग, अंडबंड बातों की भूल-भुलैयाँ में पड़कर, बहुत ही बुरी दशा में पहुँच जाते हैं।

संसार की अनेकत्व-प्रियता का रोग बढ़ता चला जा रहा है। एकत्व-प्रियता की ओर तो मानो हमने अपनी आँखें मीच ही रखी हैं। बाल की खाल निकालने में तो हम दक्ष हो रहे हैं, परन्तु हृदयरूपी दर्पण का बाल निकालने में हमारे सब उपाय निष्फल जा रहे है और तीव्र बुद्धि काम नहीं कर रही।

हम इच्छा या वासना के नियम के पाबन्द बनाये गये हैं। लेकिन पाबन्द या बन्धे हुए शब्द का तात्पर्य यहाँ बन्धन

या घिराव नहीं लेना चाहिए। इच्छा बीज है, जो अपनी उन्नति की खोज करता है, जिस प्रकार एक किसान, बिना बीज के कोई चीज़ उगा नहीं सकता; जिस प्रकार एक मनुष्य बिना बीज या वीर्य के सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकता, इसी प्रकार बिना इच्छा या वासना के किसी को भी पूर्ण उन्नति नहीं मिल सकती।

इच्छा मानव-स्वभाव का एक प्राकृतिक अंग है और उसे प्रत्येक दृष्टि से ध्यान देने का अधिकार है। केवल समझने की बात है। जब इच्छा की परिभाषा पूरी तरह से समझ में आ जाती है, तो हृदय में संशय तथा भ्रम जमने नहीं पाते।

मोती की उत्पत्ति समुद्र की सीपी से होती है, किन्तु मोती राजाओं-महाराजाओं में सम्मान पाता है।

नदियों का विकास पहाड़ के स्रोतों से होता है, किन्तु मैदानों पर उतरने पर उनकी पवित्रता और महत्त्व का पता चलता है। भावों का प्राकट्य घटनाओं के घटने पर होता है, परन्तु जब वे हृदय की प्रकाशमान धारों में स्थान पाते हैं, तो मनुष्य को देवता बना कर छोड़ते हैं।

क्रोध भावी परिणाम के विषय में नहीं सोचता, इसलिये बुद्धि उसका साथ नहीं देती। ऐसे अवसर पर वृत्तियों को प्रभावित नहीं होने देना चाहिए, बल्कि गम्भीरता और धीरज से काम लेना चाहिए। परन्तु इसका यह मतलब भी नहीं कि हमें अपने भावों को एकदम कुचल ही देना चाहिए। इससे व्यक्तित्व की बहुत हानि होती है।

हम उन्नति करने के लिए बनाये गये हैं। बीज वृ से उत्पन्न होकर बढ़ोतरी की सब इच्छाओं को पूरा क फिर बीज बनने का बच्छुक रहता है और फिर बीज

ही जाता है। हमारे अस्तित्व का आरम्भ किसी पहिले के बीज या अस्तित्व से होता है और हम इच्छावश इस ओर आकर्षित होते हैं। कठिनाई तो यह है कि हम अपने जीवन की समस्या का अध्ययन ग़लत ढंग पर करते हैं, जिसका परिणाम असफलता होता है जो लोग इस सिद्धान्त को समझ गये हैं वे सच्चे निशानेबाज़ की तरह अपने आपको संयम में रखकर, केवल निशाने की ओर अपना ध्यान गाढ़ देते हैं। जिस तरह गोली बन्दूक से निकल कर आहट करने से पहिले निशाने पर बैठकर आहट कर देती है, उसी तरह समझदार लोग भी सफलतापूर्वक सच्चा शिकार मार जाते हैं। जिनकी दृष्टि इधर-उधर रहती है उनके हाथ शिकार नहीं आता।

महाभारत हिन्दू धर्म की शिक्षा का अमूल्य भण्डार है। इसमें जिन घटनाओं का वर्णन छोटी-छोटी कथाओं के रूप में किया गया है, वे जीवन के लिए पथ-प्रदर्शक हैं।

कहा गया है कि एक बार द्रोणाचार्य राजकुमारों (कौरवों तथा पाण्डवों) को तीर चलाने की शिक्षा दे रहे थे। परीक्षा लेने के लिए वह इन सबको जंगल में ले गये। वट के वृक्ष पर एक बनावटी पक्षी बिठाया गया। आज्ञा हुई कि उस पक्षी को तीर से बेध दिया जाये। सबसे पहिले युधिष्ठिर को तीर चलाने का अवसर दिया गया। द्रोणाचार्य ने उससे पूछा, "बेटा, तुम किस-2 वस्तु को देख रहे हो ?" उसने उत्तर दिया, "गुरुदेव ! मैं आपको देख रहा हूँ, अपने को देख रहा हूँ, तीर-कमान को देख रहा हूँ और पक्षी को भी देख रहा हूँ।" इस पर द्रोणाचार्य बोले, "बैठ जा बेटे ! तू तो अभी निशाना बँधने के योग्य नहीं हुआ।" उसके बाद भीम, नकुल तथा सहदेव से भी तीर चलाने से पहिले द्रोणाचार्य ने वही प्रश्न किया कि वे क्या देख रहे हैं ? लग-भग सभी ने वही उत्तर दिया कि वे क्या-2 देख रहे हैं।

द्रोणाचार्य ने फिर दुःशासन तथा कौरव राजकुमारों को तीर चलाने की आज्ञा दी, परन्तु तीर चलाने से पहिले वही प्रश्न किया कि वे क्या देख रहे थे ? सभी कौरव राजकुमारों ने भी ऊटपटांग उत्तर दिये।

अन्त में द्रोणाचार्य ने पाण्डव राजकुमार अर्जुन को तीर चला कर पक्षी को बेधने की आज्ञा दी और उससे पूछा, "अर्जुन ! तुम इस समय क्या देख रहे हो ?"

अर्जुन ने उत्तर दिया, "गुरुदेव ! मुझे इस समय पक्षी के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा।"

द्रोणाचार्य बोले, "अच्छा अर्जुन तीर चलाओ।"

बस गुरु की आज्ञा की ही देरी थी, अर्जुन का तीर सनसताता हुआ चला और उसने पक्षी के हृदय को बेध दिया। यह है लक्ष्य पर पहुँचने का सच्चा मार्ग।

यह कथा है, किन्तु सच्ची और शिक्षाप्रद। इससे स्पष्ट है कि जिन लोगों का एक निर्धारित लक्ष्य होता है, ज़िन्दगी में वे ही सफल होते हैं जिनमें दुचिताई, दुविधा तथा इधर-उधर भटकने या देखने की आदत होती है, वे ज़िन्दगी में सफल नहीं होते। जो कहते कुछ हैं, करते कुछ और हैं फिर वे ज़िन्दगी में सफल कैसे हो सकते हैं ? धन चाहते हो, तो धन कमाने की ओर पूरा ध्यान रखो। विद्वान् बनना चाहते हो, तो विद्या प्राप्त करने का लक्ष्य सामने रखो। मान-सम्मान की इच्छा है, तो उसीका ध्यान रखो, एकाग्रता से बढ़ते चले जाओ लक्ष्य तक पहुँच जाओगे। एक लक्ष्य सामने रखो, सफलता तथा पूर्णता मिल ही जायेगी। निश्चित रूप से मिल जायेगी।

दरिद्री तथा मूर्ख मत बने रहो और न ही अनाड़ी तथा अज्ञानी रहो। अपमानित तथा सम्मानहीन न

कौन कहता है कि तुम पशुओं की तरह पशु का जीवन व्यतीत करो। जिधर झुको, शेर की तरह झुको और अपने जीवन को उन्नति की दशा में पहुँचा दो, फिर आगे का मार्ग स्वयं खुल जायेगा।

सभी बातें आपके अपने मन पर ही निर्भर रहती हैं। यदि तुम हर समय निर्धनता पर ही ध्यान देते रहोगे, तो निर्धन ही बने रहोगे और निर्धनता सब पापों की जड़ है। यदि अनाड़ीपन तथा अज्ञानता पर ध्यान दोगे तो जीवन भर अज्ञानी ही रहोगे। यदि अपमान तथा अप्रतिष्ठा पर सदा ध्यान दोगे, तो फुटबाल की तरह सबके लात-घूँसे सहते रहोगे। जब तुम स्वयं यह समझते हो कि अपमान पाप है, तो फिर चुपचाप ईमानदारी से अपना काम करते जाओ। बहुत बोलने की आवश्यकता नहीं है। बहुत बोलने वाले लोग अपने काम को बिगाड़ देते हैं। महाभारत में एक कथा आती है कि दो पक्षियों को केकड़ों से प्रेम था। जब तालाब सूख गया तो उन दोनों पक्षियों ने उन केकड़ों से कहा, "हम चोंच में लकड़ी दबा कर उड़ेंगे, तुम लकड़ी को मुँह से पकड़ लो इससे तुम भी हमारे साथ उड़ोगे। इसके बाद हम तुम्हें किसी अच्छे तालाब में पहुँचा देंगे।"

केकड़े मान गये। पक्षी और केकड़े उड़ने लगे। जब लोगों ने यह दृश्य देखा, तो वे खुशी से तालियाँ बजाने लगे। केकड़े मूर्ख थे लोगों को तालियाँ बजाते देखकर वह उन्हें कहना चाहते थे कि वे अपना काम करें उन्हें नहीं देखें। बस, मुँह खोलने की देर थी कि मुँह से लकड़ी छूट गई और केकड़े इतनी ऊँचाई से चट्टान पर गिरे और वहीं चकनाचूर हो गये। यही होता है परिणाम बहुत बोलने वालों का।

जब तुम मस्त होकर अपने काम में लग जाते हो तो मन की शक्तियों का उभार होता है । तुम कोई भी वस्तु पाना चाहो, तुम्हारा शक्तिशाली मन उस वस्तु को खेंच कर तुम्हारे पास लायेगा । यही प्रभाव चुम्बक का होता है, जिसकी ओर लोहा स्वयं खिच आता है। परन्तु पहिली शर्त यह है कि मन इधर-उधर भटकने न पाये, नहीं तो जीती हुई बाज़ी को हारने का डर रहेगा। काम करने से मन भी सदा प्रसन्न रहता है। उदासी को पास नहीं फटकने देता। यदि जीवन में तुम्हें अभी तक असफलता ही असफलता मिली है, तुम निर्धन, मूढ़ तथा अपमानित रहे हो इसकी तनिक भी चिन्ता न करो, दूसरों को यदि तुम असफल देखते हो, तो इसकी भी चिन्ता मत करो, सम्भव है वे 'एक सिर हज़ार सौदा' के भक्त हों। तुम तो केवल ईमानदारी से काम में लग जाओ ज़रूर सफल रहोगे।

रामायण में उल्लेख है कि गंगा को पृथ्वी पर लाने में महाराजा सगर के सहस्रों पुत्र नष्ट हो गये, क्योंकि वे 'एक सिर हज़ार सौदा' वाले लोग थे। परन्तु भगीरथ इन सबके प्रतिकूल अपनी धुन के पक्के एक लक्ष्य पर आरूढ़ तथा निष्ठावान थे । उन्होंने सिरतोड़ परिश्रम किया और हिमालय का हृदय चीरते हुए गंगा जी को पृथ्वी पर लाये। भूमि को सिचाई का अवसर दिया। खेतियाँ लहलहा उठीं। बंजर भूमि हरी-भरी हो गई। अकाल का भय जाता रहा। गंगा की लहरें हर-हर करती हुई गंगोत्री से हिन्द महासागर की ओर चली गईं। बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, पटना, मुंगेर, हुगली आदि पचासों नगर इसके तट पर बस गये। केवल एक भगीरथ के परिश्रम का ही यह फल रखो :—

'अलूल अज्म दानिश्मन्द जब करने पै आते हैं।
समन्दर फाड़ते हैं कोह से दरिया बहाते हैं॥'

यह तो सभी जानते हैं कि काम का सम्बन्ध मन से है। मन जो चाहता है, वह कर लेता है। मन के आकर्षित हुए बिना कोई काम करना सम्भव नहीं है। जो कुछ भविष्य में होने वाला है सच्चे मन वाला मनुष्य उसे पहिले ही जान जाता है और उस काम को पूरा करने के लिए काम का पूरा नक्शा उसके विचार में आ जाता है। उदाहरणस्वरूप, जब एक आदमी घर बनवाना चाहता है तो घर का नाम लेते ही, जो कुछ घर की रूपरेखा है, वह उसकी बुद्धि में पूरे विवरण के साथ आ जाती है। सफलता के लिए यह प्रथम और मुख्य भाग है। यही असली नींव है। जिस समय उस मनुष्य ने जान लिया, कल्पना में उसे देख लिया, तब घर का विचार उसके मन में कुछ इस प्रकार चिपट जाता है कि वह काम करने पर विवश हो जाता है और घर बनवा कर ही छोड़ता है। घर उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है। यह मन का स्वाभाविक भाव है, जो प्रकृति ने प्रत्येक व्यक्ति को प्रदान किया है और यह काम ही मनुष्य की प्रथम सफलता है।

मानव-जीवन की सफलता की दशा ठीक घर के दृष्टान्त से समानता रखती है। किसी-2 की बुद्धि में तो सफलता के सब अंग पहिले से ही आ जाते हैं परन्तु किसी-2 की बुद्धि में पूरी तरह सोच-विचार न करने के कारण पूरा नक्शा तैयार नहीं होता। यही कारण है कि ऐसे व्यक्तियों को समय-2 पर सुधार की आवश्यकताएँ रहती हैं।

मनुष्य के मन में प्रकृति ने विचित्र त्रिपुटी की नींव रखी है। इसमें आदि, मध्य और अन्त तथा पृथ्वी, अन्तरिक्ष

और आकाश की विभिन्न श्रेणियाँ अलग-2 मौजूद हैं। सफलता के इच्छुक को पहिले 'पृथ्वी' पर धन एकत्रित करने की जरूरत रहती है। उसके बाद 'आकाश' पर धन इकट्ठा करने की बारी आती है। अब आप प्रश्न करेंगे कि मध्य भाग को क्यों छोड़ा जा रहा है ?

मन का मध्य भाग वह है, जिसमें संकल्प-विकल्प उत्पन्न हुआ करते हैं। सोचने-विचारने का सम्बन्ध केवल इसी ही भाग से है। आप जो देखते, सुनते, सूँघते और खाते हैं उनके स्वाद का ज्ञान इसी मध्य भाग के ही आधीन है। यह मन सबसे पहिले स्वाद लेता है, तब उसे पृथ्वी और आकाश में धन जमा करने की सूझती है। यह हमारा मेदा (पक्वाशय) मन की पृथ्वी है। चबाये हुए ग्रास का धन पहिले मेदे में जमा किया जाता है फिर उसीसे रक्त और धातु आदि बन कर नाड़ियों में दौड़ते हैं और उन सब का मुख्य अंश जिसे ओजस् कहते हैं मस्तिष्क की ओर जाकर इकट्ठा होता है। मुख का लावण्य तथा माथे और आँख का तेज सब ओजस् ही हैं। यदि ओजस् न हो, तो फिर मुख पर तेज या लावण्य कभी नहीं आने पायेगा।

तुम्हारा मस्तिष्क, आकाश से धन जमा करता रहता है। दोनों जगह धन के इकट्ठा करने वाले तुम ही हो परन्तु तुम्हें इसका ज्ञान नहीं। जैसे भोजन अपने को सारे शरीर में पहुँचाने का काम तुम्हीं से ही कराता है, किन्तु तुमको इसकी तनिक भी जानकारी नहीं हो पाती। क्या हो पाती है ?

मनुष्य को जो कुछ ज्ञान प्राप्त होता है, उसका सम्बन्ध केवल मन के मध्य भाग से ही होता है, क्योंकि मध्य भाग मिला हुआ है आकाशी होने के कारण इसमें पृथ्वी अं

आकाश, आदि और अन्त के प्रभाव मिले-जुले रूप में रहते हैं। जहाँ दो वस्तुओं की मिलौनी होती है, वहीं विवेक अहंकार और सोच-विचार की दशा उत्पन्न होती है। जहाँ मिलौनी नहीं है, वहाँ कोई कैसे परख करेगा और क्या ? यह विशेषता केवल बीच वाले मन की है। यदि इसे भली प्रकार समझ लो और काम में लग जाओ तो तुम न ही केवल बुद्धि-मान् हो जाओगे अपितु अपने निर्धारित एकमात्र लक्ष्य पर भी पहुँच जाओगे।

इस मन के तीन रूप हैं (1) स्थूल, (2) मध्य और (3) सूक्ष्म स्थूल भाग तो मेदा में रहता है, जो पृथ्वी है, सूक्ष्म भाग मस्तिष्क में रहता है, जो आकाशीय है और मध्य भाग हृदय में रहता है। इसी मन के बीच के भाग को हर जगह काम करना पड़ता है। यदि इस बीच वाले मन को शुद्ध कर लो, संशय तथा भ्रम से रहित कर लो फिर इससे काम लो तब देखो कि तुम अपने लक्ष्य में सफल होते हो कि नहीं।

मन को इस प्रकार उज्ज्वल करके सांसारिक व्यवहार में लगो, ताकि तुममें धैर्य, दृढ़ता, एकाग्रता आ जाये, जो काम हाथ में लो उसे पूरा करके दिखाओ। अशुद्ध कमाई तथा अशुद्ध मन मनुष्य के लिए दरिद्रता और अपयश का कारण बनते हैं।

एक व्यक्ति जीवनभर काम करता है, वह खाने-पीने भर को भी कठिनता से प्राप्त करता है, एक दूसरा व्यक्ति है जो दिनभर तो काम नहीं करता मगर थोड़े से समय के लिए काम करता है, परन्तु लक्ष्मी उसके पास रहती है। बात क्या है ? क्या भाग्य ने उन दोनों की दशाओं को भिन्न भिन्न बनाया है ?

नहीं ! बिलकुल नहीं। भाग्य ने उनकी दशाओं को भिन्न नहीं बनाया बल्कि उन दोनों ने अपना-2 भाग्य स्वयं बनाया है। उनकी सफलता या असफलता में किसी देवी-देवता का हाथ नहीं और न ही कोई देवी-देवता किसी को भाग्यशाली या दुर्भागी बना सकता है। जो जैसा करता है वैसा फल पाता है, जो जैसा सोचता है, वह वैसा ही हो जाता है। जब तक आदमी दूसरों के आश्रित रहता है सौभाग्य का मुँह नहीं देखता। जो व्यक्ति दिनभर काम करता है, फिर भी भूखों मरता है, इसका मतलब यह है कि वह आदमी ज़रूर ही बददिल और बेदिल व्यक्ति है, जो दूसरों की कमाई पर आँख लगाये रहता है।

जैसे संसार की सारी बातें किसी न किसी नियम या कानून पर निर्भर रहती हैं, वैसे ही सफलता भी अपना विशेष नियम रखती है। इस नियम की कुछ धाराएँ हैं उनकी मैं संक्षिप्त व्याख्या करना चाहूंगा :—

(1) इस धारा के अनुसार जो मनुष्य सफलता प्राप्त करना चाहता है, उसको ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिए।

(2) जो व्यक्ति सफलता चाहता है उसे चाहिए कि वह सदा बनाने वाले (Constructive or Positive) विचारों से सम्बन्ध रखे बिगाड़ने वाले (Negative) विचारों से नहीं।

(3) काम करते चले जाओ, परन्तु काम के फल को ईश्वर के अर्पण करो, अहंकार मत करो।

(4) काम का लक्ष्य सदा दृष्टि के सामने रखो। लक्ष्य के बिना सफलता नहीं मिलती।

(5) विरोध या विरोधियों से भयभीत न होओ।

मानव की माया अति विचित्र है। सब कुछ उसके हाथ में है। व्यावहारिक जगत् को माया न समझ कर सत्य समझने में कोई हर्ज़ नहीं है। इसको सच ही समझो, परन्तु इस संसार में बिलकुल लिप्त भी न हो जाओ। सारा खेल तुम्हारे मन का है। इसको यदि वश में कर लो और अपना इष्ट या लक्ष्य एक बना लो तो जीवन में सफलता ही सफलता मिलेगी और अन्त में अपने परमलक्ष्य तक पहुँच जाओगे। एक लक्ष्य बनाने से सफलता शीघ्र प्राप्त होती है। इधर-उधर भटकने से अन्त में पछताना पड़ता है।

सन्तमत के अधिकारी

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

का

11 नवम्बर 1967 को मानवता मन्दिर होशियारपुर
में दिया गया

सत्संग

निज बैपारी नाम का हाटै चलु भाई ॥
साध सन्त गहकी भये, गुरु हाट लगाई।
सार सबद कछु वस्तु है, सौदा करु भाई॥
भाव खुला पंच रंग का, बहु करत दलाली।
जा के हाथ विवेक है, करि देत सवाई॥
पाप पुन्न पलरा भये, सुरत भई दाँड़ी।
ज्ञान दुसेरा डारि के, पूरा करु आई॥
करि सौदा घर को चले, रोका दरबानी।
लेखा दे निज नाम का, कहँ का बैपारी॥
पानी सी बानी वही, गुरु छाप दिखाई।
इतना सुन कायल भये, जम सीस नवाई॥
सन्त चले सतलोक को, छोड़ा संसारी।
कुन्दन भये दरबार में, प्रभु नज़र गुज़ारी॥
कहै कबीर बैठो सहो, सिख लेहु हमारी।
काल कलप व्यापै नहीं, इहै नफ़ा तुम्हारी।

राधास्वामी !

सात वर्ष की आयु में मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं राम को मिलूँ। हिन्दु धर्म में कहा गया है कि नाम जपो। मैंने राम, राम की बहुत मालाएँ फेरीं और विष्णु-सहस्त्रनाम के बहुत पाठ किये, लेकिन मन स्थिर न हुआ और जीवन के अनुभव बदलते रहे। एक बार मैं लगातार चौबीस घण्टे तक रोता रहा। डाक्टर को बुलाया गया और उसने समझा कि मैं पागल हो गया हूँ। प्रात: पाँच बजे एक दृश्य मुझे दाता दयाल जी के चरणों में ले गया। उन्होंने मुझे अपना लाहौर का पता बताया। मुझे कुएँ से पानी निकाल कर नहलाया और यह नाम दिया। इतने में उस स्वप्न में मेरे पिता आ गये। उन्होंने मेरी शिकायत की। मैं रोने लगा। इतने में काँटे वाले ने मुझे जगा दिया। इसके बाद मैं दाता दयाल जी के पास चला गया और उन्हें राम समझ कर पूजने लगा। उन्होंने मेरी सुरत को गुरुमत और नाम की ओर लगाया।

उन्होंने मुझे नाम दिया और कहा, "यदि तुम असली राम को मिलना चाहते हो, तो सन्तों के मार्ग पर चलो, नानक साहिब, दादू, पल्टू, राधास्वामी और कबीर साहिब के मार्ग पर चलो। परन्तु जब मैंने इनकी वाणियाँ पढ़ीं तो दहल गया इनमें सब मतों तथा धर्मों का खण्डन था। कबीर साहिब, स्वामी जी तथा अन्य सन्तों ने किसीको भी नहीं छोड़ा, राम को, कृष्ण को, वेदान्त को सूफियत को किसीको नहीं। मैंने 1905 में नाम लिया था और 1916 तक सिवाय रोने तथा प्रार्थना करने के मेरा कुछ नहीं बना। उस समय तो मुझे पता नहीं था, लेकिन अब पता चलता है कि इतनी देर क्यों लगी। क्योंकि तेरह वर्ष की आयु में मेरा विवाह हो गया था और सोलह साल की आयु में मैं

गृहस्थ में फँस गया। अब सोचता हूँ, क्योंकि मैंने छोटी आयु में विवाह कर लिया था, उसके कारण मैं अपने अन्तर में प्रकाश और शब्द को न पकड़ सका।

1916 में मैं बसरा बग़दाद लड़ाई में चला गया और बारह साल तक वहीं रहा। मैं वहाँ अकेला था। खूब साधन करता। मैंने बड़ी-2 रौशनियाँ देखीं, यहाँ तक कि रात को रज़ाई के अन्दर से कमरे की छत की कड़ियाँ गिन सकता था। मैंने बहुत बीनें और शब्द भी सुने। यह पुरुषोत्तम दास जो सामने बैठा हुआ है, यह उस समय जलीवा में स्टेशन मास्टर था और मैं था तार इन्स्पैक्टर। मैं जब दौरे पर गया, तो इसके स्टेशन पर उतरा। मुझे याद है कि वहाँ मुझे सारा आसमान ही बीन की आवाज़ से गुंजायमान सुनाई देता था। मैं बसरा बग़दाद से बारह वर्ष बाद भारत वापिस आया। दाता ने हुकम दिया कि मैं सन्तान पैना करूँ, क्योंकि उस समय तक मेरी कोई सन्तान नहीं थी। मैं स्त्री के पास सन्तान की इच्छा से जाता तो बात और थी, परन्तु मैं तो उसके पास भोग के लिए जाता। मैं स्वाद के चक्कर में था। मैं स्टेशन मास्टर था, जब कभी मेरे नीचे काम करने वाले लोग ग़लती करते, तो मुझे क्रोध आ जाता था। यद्यपि मैंने कभी अनुचित ढंग से पैसा नहीं कमाया, फिर भी मेरे मन में यह इच्छा तो रहती थी कि मेरी तरक्की हो जाय, मेरी तनखाह बढ़ जाय। मैंने कई बार दाता दयाल जी से शिकायत की, "आपने मुझे फकीर या गुरु तो बना दिया, परन्तु मुझमें तो अभी भी बहुत ऐब हैं, अवगुण हैं।"

अब आप ही सोचो भाई! इतनी बीन सुनने के बाद तथा इतनी रौशनी देखने के बाद भी मेरे में अवगुण बने रहे। यद्यपि सन्तों ने नाम का ढिंडोरा पिटवाया हुआ है,

अरे तुम भी नाम ले लो, तुम भी ले लो और बीन सुन लो, तो तुम सीधे सतलोक में जाओगे, फिर भी नाम तथा बीन सुनने से तुम अवगुणों से रहित हो जाते हो क्या? नहीं, हरगिज़ नहीं। मैं सोचा करता था कि बीन सुनने के बाद, कम से कम मैं कामी तो नहीं रहूंगा। क्या मैं काम से मुक्त हो गया? नहीं ! मैं कामी थना रहा । यद्यपि मैं बाहर किसी औरत के पास नहीं गया फिर भी काम में तो फँसा रहा। क्या मैं क्रोध और लोभ से मुक्त हो गया? नहीं क्रोध भी आमा और लोभ भी चाहे वह अनुचित नहीं था फिर भी मैं उनसे मुक्त तो नहीं हुआ, तो फिर नाम लेने का फायदा क्या हुआ?

मुझे सच्चे नाम की समझ आप सत्संगियों ने दी, इसलिये मैं आपको सच्चा सद्गुरु मानता हूँ। आज आपको कबीर साहिब की एक बाणी सुनाता हूँ कि नाम क्या है और उसका अधिकारी कौन है? संसारी अन्धेरे में चलते हैं। उनका भी कोई दोष नहीं, क्योंकि उन्हें कोई सच्ची बात तो बताता ही नहीं। सच्ची बात बता देने से सत्संग नहीं बनता, और न ही धन आता है। मैं अपने कर्मभोगवश जो कुछ जीवन में अनुभव कर रहा हूँ और जो कुछ मैंने समझा है, कबीर साहिब के शब्द पर मोहर लगाता हूँ, क्योंकि उनकी बाणी सत प्रतीत होती है और मुझे उत्साह हो गया कि मैंने जो कुछ नाम के बारे में समझा, वह ठीक है। कबीर कहते हैं :—

निज बैपारी नाम का, हाटे चलु भाई।
साध सन्त गहकी भये, गुरु हाट लगाई॥
सार सबद कछु वस्तु है, सौदा करु भाई।

कलियुग में नाम का ही ज़ोर है। सभी धर्म तथा पन्थ

नाम देते हैं। मुझे भी कई लोगों के रोज़ पत्र आते हैं कि मैं उन्हें नाम दे दूँ। मैं किसीको क्या नाम दूँ ? जब मैं इतनी बीन सुनने तथा इतना प्रकाश देखने के बाद भी कामी ही रहा, कर्मचारियों पर क्रोध किया तथा स्त्री के पास स्वाद के लिए गया, तो फिर नाम देना कैसा ? केवल बीन सुनना ही नाम नहीं है। कबीर साहिब ठीक कहते हैं कि सद्गुरु नाम अर्थात् सार शब्द केवल साधुओं और सन्तों को ही देता है। मैं भी यही कहता हूँ कि असली और सच्चे नाम के अधिकारी केवल साधु और सन्त ही हैं। साधु कौन है ? जो अपने मन पर काबू रखता है, जिसके मन में शक्ति है और जो अपने मन के अन्दर गुरु, देवी या किसी का रूप बना कर ध्यान करता है। सन्त वह है, जिसके अन्तर में प्रकाश पैदा होता है। मैंने बहुत प्रकाश देखे, बहुत शब्द सुने। प्रकाश देखने तथा शब्द सुनने वालों को सन्त कहते हैं। त्रिकुटि में रहने वाले को साधु और भँवरगुफा या सतलोक में रहने वाले को सन्त कहते हैं।

असली नाम वह है, जिससे हमारे अन्तर के अवगुण निकल जायँ और हम अपनी जात में मिल जायँ। ऐसी समझ का नाम है सार और यही सार ही असली नाम है। उसका अधिकारी केवल साधु या सन्त ही है। दाता दयाल जी महाराज ने मुझे 1918 में कहा था, "तुममें निनानवे अवगुण क्यों न हों, लेकिन तू सच्चाईप्रिय है। तुम्हें सच्चा सद्गुरु सत्संगियों के रूप में ही मिलेगा और तेरा बेड़ा पार करेगा।" दाता दयाल जी महाराज की कृपा और आपकी दया से सच्चे नाम का आपके द्वारा ही पता लग गया। जब मैंने सुना कि मेरा रूप आपको प्रकट होकर अ काम कर जाता है और मैं वहाँ होता नहीं, तो मुझे

लग गया कि जो कुछ हमारे अन्तर में प्रकट होता है रौशनी, शब्द, गुरु का रूप, देवी-देवता और विचार, ये वास्तव में होते नहीं हैं बल्कि भासते हैं। असली नाम तो वह है जिससे आदमी का आवागमन समाप्त हो जाये। ऐसे नाम का अधिकारी केवल साधु और सन्त ही होता है। मैंने अपनी संस्था का नाम मानवता मन्दिर रखा है क्योंकि जब तक इन्सान सच्चा मानव नहीं बनता, उसका आचरण ठीक नहीं है, वह जीना नहीं जानता और उसका मन उसके वश में नहीं है, उसे असली और सच्चा नाम मिल ही नहीं सकता। मैं जो मुँह से कहता हूँ यही मेरा नामदान है। मैं लोगों को मकान के अन्दर बैठकर नाम नहीं जपवाता, किन्तु मैं इसका खण्डन भी नहीं करता क्योंकि जो आरम्भ कर रहे हैं या जो पहिली कक्षा के हैं उनके लिए यह ठीक भी है। मैं ऊँचा चला गया। मैं अब क, ख, ग नहीं पढ़ा सकता। सर्वसाधारण को मेरे से नाम का लाभ नहीं हो सकता।

कबीर साहिब ने बहुत जगह पर सार शब्द या सार नाम का वर्णन किया है। जो मैं घण्टा, शंख, ओं की धुन, रारंग, सारंग या बीन सुनता था, वह क्या निकला? वह सार शब्द नहीं निकला। अगर वह सार शब्द होता, तो मैं घर में आकर कामी कैसे होता, मुझे क्रोध क्यों आता? जब से मुझे इस भेद का पता चला कि मेरा रूप लोगों को प्रकट होकर उनके काम कर जाता है, जबकि मैं वहाँ होता नहीं, तो यह स्पष्ट हो गया कि जो कुछ मेरे अन्तर फुरता है, चाहे वह राम हों, कृष्ण हों या दाता दयाल हों, वह सब माया है। जहाँ सच्चा नाम हो वहाँ न माया होती है न ब्रह्म। ब्रह् का अर्थ है बढ़ना और म का अर्थ है मनन

करना। रौशनी हर जगह फैली हुई है और रौशनी ही ब्रह्म है। जब मुझे यह ज्ञान हुआ तब सार शब्द का पता लगा। अब जब मैं अभ्यास करता हूँ तो मेरे सामने कोई भी रूप नहीं आता, केवल प्रकाश और शब्द ही होता है। प्रकाश को देखने तथा शब्द को सुनने वाली कोई और चीज़ है तथा प्रकाश और शब्द कोई और चीज़। मैं उस चीज़ की ही तलाश में रहता हूँ जो प्रकाश को देखती और शब्द को सुनती है, मुझे सार शब्द मिल जाता है। सार शब्द क्या है? जहाँ न मैं है न तू; न गुरु है, न चेला। यह सन्तों की अपनी ही खोज का परिणाम है। जहाँ स्वामी जी चैत महीने में सारे दर्जे बताते हैं, वहाँ आखिर में क्या कहते हैं :—

'नहीं वहाँ सतनाम, न नाम न अनामी।'

यदि हम सदा के लिए अपने मालिक में, उसका रूप होना चाहते हैं, तो हमें कहाँ जाना पड़ेगा जहाँ न सत है, न नाम है और न अनामी है। आप लोग सांसारिक सुखों के पीछे भटकते रहते हैं। किसीको कुछ चाहिए, किसीको कुछ। गुरु कुछ नहीं करता, हमें, तुम्हें जो कुछ मिलता है, वह हमारे अपने ही कर्मों का फल होता है। जो गुरु दो-दो, तीन-तीन साल स्वयं बीमार रहते हैं तुम उनसे यह आशा कैसे कर सकते हो कि वे तुम्हें ठीक कर देंगे।

सर्वसाधारण नाम के अधिकारी नहीं हैं, इसलिये मैं किसीको नाम देता ही नहीं। पहिले मन पर काबू पाना सीखो। जब तक मन तुम्हारे काबू में नहीं लाख कोशिश करो तुम नाम नहीं जप सकते। विषय-भोग में भी रोक लगाओ। आप पचास-2, साठ-2 साल के हो गये। आपके बच्चे नौजवान हो गये, फिर भी आप विषय-भोग छोड़ते नहीं तो फिर इस बात की आशा क्यों करते हो कि तुम्हारे

मन को शान्ति मिलेगी। नहीं मिलेगी, कभी नहीं मिलेगी। सर्वसाधारण के लिए नाम है ही नहीं। उनके लिए तो मानवता की शिक्षा दी है। पहिले मानव बनो। ऋषियों ने कहा है कि पच्चीस साल तक ब्रह्मचर्य का पालन करो। क्यों? खून की चालीस बूँदों से एक बूँद ओजस् की बनती है और ओजस् की चालीस बूँदों से एक बूँद वीर्य की बनती है। जिन आदमियों और लड़कों का वीर्य छोटी आयु में नष्ट हो जाता है उनके भाग्य में रोना ही रोना तथा अशान्ति अनिवार्य है। स्वास्थ्य के बिगड़ने और अशान्ति के कई कारण हैं, परन्तु उनमें से मुख्य कारण है विषय-भोग। दूसरा है आर्थिक कठिनाई, पैसे की कमी, तीसरा है किसी का अनुचित दबाब और चौथा कारण है अज्ञान। इसलिये मैं सदा यह कहता रहता हुँ कि अपने चरित्र को बनाओ। यह माँ-बाप का पहिला कर्त्तव्य है। मैंने अपने लड़के को नाम नहीं दिया, लेकिन उसके चरित्र को बनाया। इस समय वह बड़ा भारी नेक आफिसर है। मैंने उसे कभी नहीं कहा कि वह बैठकर राधास्वामी जपा करे। पहिले मानव बनो। मेरे अपने दुःखों का क्या कारण था? छोटी आयु का विवाह। मेरे पिता बड़े ही कठोर दिल वाले थे। मैं ज़रा भी ग़लती करता, तो तुरन्त थप्पड़ मारते थे। मैं हर समय सहमा हुआ रहता था। इन्हीं कारणों से मैं ईश्वर की ओर आया।

'दुःख दारु सुख रोग भया।'

मैं अपने दुःखों के कारण ही रूहानियत की ओर आया और मेरा जीवन बन गया। गुरु धारण करने का भाव यह है कि गुरु के सत्संग में जाकर, उसकी बात को ग़ौर से सुनो, समझो और फिर उस पर अमल क़रो। संसार वालों ने

सत्पुरुष को, सद्गुरु को नहीं समझा। वे तो कोरे शब्दों के जाल में फँसे हुए हैं। सुखमनी साहिब में साफ लिखा है :—

'जिव्वा एक अस्तुति अनेक, सत्पुरुष है पूर्ण विवेक।'

विवेक कब मिलेगा? जब तुम किसी सन्त या किसी महापुरुष के सत्संग में जाओगे, उसकी सेवा करोगे। सेवा क्या है? संसार वालों ने यह समझा हुआ है कि सेवा केवल गुरु को धन देना ही है। दीवानो! अगर धन देने से कोई सतलोक पहुँच जाता, तो ये बड़े-2 धनी लोग धन देकर वहाँ पहुँच जाते। गुरु की सेवा करनी पड़ती है। परन्तु लोग सेवा का ठीक-2 मतलब नहीं समझते। आपने तो यही समझा है न कि बाबा फकीर आया, उसे पाँच-छः सब्जियाँ बना कर खाना खिला दिया, कपड़े पहना दिये, बनियान पहना दीं, पैसे दे दिये। यह ग़लत है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि तुम जो कुछ दोगे, वही तुम्हें मिलेगा। पर यह तो संसार का व्यवहार है, इससे परमार्थ का कोई सम्बन्ध नहीं। क्या मेरे मन्दिर में चार कमरे बनवाने से या किसी दूसरे डेरे में कमरा या महल बना देने से तुम सतलोक में पहुँच जाओगे? बिलकुल ग़लत है। गुरु की असली सेवा है :—

दर्शन करे, पुनि बचन सुने, सुन-2 कर मन में गुने।
गुन-2 काढ़ ले तिस सारा, काढ़ सार तिस करे आहारा।
कर आहार पुष्ट हुआ भाई, जग भव भय सब गई गँवाई।

यह बाहर का देना तो केवल एक शिष्टाचार है, क्योंकि जब भी किसीको मिलने जाते हैं तो खाली हाथ नहीं जाते और जाना भी नहीं चाहिए फिर गुरु के दरबार में तो बिलकुल ही नहीं। हमारी सभ्यता देखो, जब ऋषि-मुनि तक भी राजा-महाराजाओं के दरबार में जाते थे तो

और कुछ नहीं, तो यज्ञ करने की समिधा ही ले जाते थे, क्योंकि वे धन नहीं रखते थे। किसी समय वे यज्ञोपवीत की डोरी ही ले जाते थे। सन्त बहुत ही सच्चे तथा पवित्र हृदय वाले होते हैं। अगर किसी ने सच्चे सन्त के दर्शन करने हों तो छः महीने या साल के बच्चे के दर्शन करो। जो उस बच्चे के मन की दशा होती है, वही एक सच्चे सन्त के मन की होनी चाहिए। न किसी से राग न द्वेष, न विरोध। न वह खुदा को याद करता है, न राम को न कृष्ण को, अब मैं भी किसी को याद नहीं करता। मैं अब नाम नहीं जपता, बल्कि नाम मुझे जपता है।

'माला फेरूँ न हर भजूँ, मुख से कहूँ न राम।
मेरा राम मुझे जपे, तब पाऊँ विश्राम ॥'

नाम तो मैं पहिले भी जपता था, परन्तु उस समय मैं भ्रम में था। उस समय मुझे यह ज्ञान नहीं था कि मेरा राम मुझे हर समय जपता है। राम मुझे कैसे जपता है? राम प्रकाश और शब्द है, वह तो हर समय मेरे अन्तर में था, है और मरते दम तक रहेगा। वह तो हर समय मुझे जपता था और मेरे साथ रहता था, मगर मुझे इसका पता ही नहीं था। इसका सच्चा ज्ञान तो बाहर का गुरु देता है।

सहस्र-दल कमल, त्रिकुटि, सुन्न, महासुन्न और भँवर-गुफा क्या हैं? जिस तरह का तुम्हारा मन है, उसी प्रकार के दृश्य, तुम्हें अन्तर में दिखाई देंगे। तुम्हारे जैसे संस्कार हैं और विचार हैं वैसे तुम्हारे अन्तर में पैदा होंगे, इसलिये समझ-बूझ कर अभ्यास करो। यह अभ्यास हरएक आदमी के भाग्य में नहीं आता।

मैं स्त्रियों को सदा यही कहता रहा हूँ कि वे अपनी सन्तान को बनाने वाली हैं दूसरा कोई नहीं। जब बच्चा

पेट में होता है, माँ के विचार उसके दिमाग़ में जाते हैं इतिहास इसका गवाह है। मेरे सत्संग में जो माताएँ तथा बेटियाँ आती हैं मैं उनसे कहता हूँ कि मुझसे कुछ ले जाओ। गंगा बह रही है, अगर नहाना-धोना नहीं तो कम से कम ठण्डी हवा ही ले लो। जिस प्रकार के संस्कार तुम्हारे अन्तर में होते हैं, वे ही बच्चा पेट में ग्रहण करता है। मैं आपको अकबर महान् का उदाहरण देना चाहूंगा। बादशाह हुमायूँ शत्रु से डर कर जंगल में छुपा हुआ था। उसकी बेगम के पेट में अकबर था। जब बेगम जंगल में बैठी हुई ज़मीन पर एक नक्शा बना रही थी, उधर से हुमायूँ गुज़रा तो बेगम से पूछा, "यह तुम क्या कर रही हो ?" उसने उत्तर दिया "मेरे घर में जो लड़का पैदा होगा, वह देश के उतने हिस्से का राजा होगा, जितना कि मैं नक्शा खींच रही हूँ। यह बेगम की इच्छा थी और उसका बेटा अकबर भारत का महान् सम्राट् बना।

मैं आपको अपना ही उदाहरण देता हूँ। मैं एक सिपाही का लड़का हूँ। मेरे पिता के घर बारह वर्ष तक कोई सन्तान नहीं हुई। मैं पहिला लड़का था। मेरी माँ ने मुझे बड़ा होने पर बताया, "बेटा ! जब मैं स्टेशनमास्टरों को झंडियाँ हिलाते देखती थी, तो मेरी यह प्रबल इच्छा होती कि मेरा भी कोई लड़का स्टेशन मास्टर बने। माँ की इच्छा का परिणाम यह निकला कि मैं स्टेशन मास्टर बन गया और मेरा छोटा भाई ट्रैफ़िक मैनेजर रेलवे हुआ और गाड़ियों में घूमा। ऊँची बातें तो आपकी समझ में नहीं आयेंगी। सीधी सी बात बताता हूँ कि आप माताएँ ही राष्ट्र को बनाने वाली हैं। अच्छी सन्तान पैदा करो। यदि अभिमन्यु माँ के पेट में चक्रव्यूह बींधना सीख सकता था और माँ के भावों

के अनुसार मैं स्टेशन मास्टर और मेरा भाई ट्रैफिक मैनेजर हो सकता है, तो बाकी बच्चों पर भी माँ-बाप का प्रभाव क्यों न पड़ेगा ?

मैंने स्वयं सन्तान के विचार से केवल एक ही लड़का पैदा किया, वरना मैं भी आप ही की तरह दोषी हूँ। मैंने भी खुदरौ सन्तान पैदा की। किन्तु उस समय मुझे ज्ञान नहीं था। मालिक ने मुझ पर दया की और मेरी खुदरौ सन्तान मर गई। जब बच्चा पेट में हो तो माताओं को चाहिए कि वे अच्छे विचार रखें। मैं महिलाओं को इसलिये गुरु या आचार्या बना रहा हूँ कि वह महिलाओं को अच्छी शिक्षा दे सकें। मैं इसके बिलकुल ही विरुद्ध हूँ कि स्त्रियाँ सन्तों-महात्माओं के पैर दबाती फिरें।

स्त्री-पुरुष जिस प्रकार के विचार रखते हैं वैसे बच्चे पैदा होते हैं। स्त्री के गर्भ में बच्चा होता है इसलिए उसके कमरे में सुन्दर-2 बच्चों के चित्र टाँगे जाते हैं जिससे स्त्री उन्हें देखती रहे और बच्चा सुन्दर पैदा हो। उस सुन्दरता के विचार पेट में बच्चे पर जायँ। मैं आपको इस विषय में समाचार पत्र में छपे हुए एक समाचार की बात सुनाता हूँ। एक अंग्रेज़ घर में एक लड़के का जन्म हुआ। उसकी शकल-सूरत और रंग अंग्रेज़ों जैसा नहीं था, बल्कि हब्शियों की तरह था। पति ने पत्नी पर दावा कर दिया कि वह बच्चा उसका नहीं हो सकता, वह किसी और का है। परन्तु पत्नी इस बात पर डटी रही कि बच्चा उसके पति का ही है। जब उस बच्चे के खून को उस अंग्रेज़ के खून से मिलाया गया तो वह बिलकुल एक जैसा था। अब जज विपत्ति में पड़ गया कि वह क्या निर्णय दे। जज बहुत ही समझदार था। वह उस पति-पत्नी के मकान में गया और उस कमरे में

गया, जहाँ वह महिला अधिकतर रहती और सोती थी। उसने उस कमरे की दीवार पर एक हब्शी की फोटो को टँगे हुए देखा। उस फोटो को वह महिला सोते, उठते, बैठते, हर समय देखती थी। इसलिये पेट में बच्चे की शकल वैसी ही बन गई।

आपने देखा होगा कि मेरी लड़कियों का रंग गोरा है, परन्तु मेरे लड़के पदम का रंग साँवला है, क्यों? मेरे दफ्तर में एक काँटे वाला था कालू नामक एक आदमी जो एकदम काला था। मैंने एक दिन उसे अपने घर किसी काम के लिए भेजा। जिस समय वह मेरे घर पहुँचा, उस समय मेरी स्त्री मासिकधर्म से नहा कर गुसलखाने से बाहर निकली और उसकी नज़र कालू पर पड़ गई। मेरी पत्नी को फिर मासिक-धर्म नहीं आया, पेट में बच्चा आया, परन्तु वह कालू कुछ तो प्रभाव छोड़ ही गया। इसलिये मेरा लड़का साँवला हुआ। मैं सबको कहता रहता हूँ कि माताएँ सुखी जीवन बिताने के लिए अपनी लड़कियों को समझाएँ और बाप लड़कों को।

मैं यह नहीं कहता कि आप मेरे ही सत्संग में आओ। आपकी इच्छा है तो मेरे सत्संग में आओ, नहीं इच्छा तो मत आओ। आपकी इच्छा हो तो मेरी किताबें पढ़ो नहीं इच्छा तो मत पढ़ो। मेरे जैसे संसार में बहुत फकीर आये और अपनी-2 वाणी कह कर चले गये। संसार तो वैसा का वैसा ही रहा, बदला नहीं। जिनके भाग्य में होता है वे सत्संग को सुनकर, उस पर अमल करके, अपना जन्म बना लेते हैं, जिनके भाग्य में नहीं, वे नहीं बना पाते। मैं तो सच्ची बात कहता हूँ :—

भाव खुला पंच रंग का, बहु करत दलाली।
जा के हाथ बिबेक है, करि देत सवाई॥

तुम लाख जतन करो, लाख नाम जपते रहो, किन्तु यदि तुम्हारे मन के विचार शुद्ध नहीं हैं, यह नाम तुम्हें खा जायेगा। तुम नाम जपते तथा सुमिरन ध्यान करते हो, उससे क्या होगा? तुम्हारी संकल्प-शक्ति (will power) बढ़ जायेगी। जिसकी संकल्प-शक्ति बढ़ जाती है, उसके काम बनते चले जाते हैं। उसका श्रेय जाना तो ध्यान लगाने वाले को चाहिए; परन्तु नाम हो जाता है बाबा फकीर या और किसी गुरु का। जो कुछ भी है तुम्हारा अपना ही विचार है और विचार में बहुत शक्ति होती है। यदि मन को ठहरा दिया जाय तो चंचलता सब दूर हो जाती है। मेरा मन बहुत ही चंचल था। दाता ने मुझे एक तम्बूरा दे दिया और चार तारों में सुर करना सिखा दिया, जिससे मेरा मन स्थिर हो जाय, एक जगह टिक जाय। गुरु सदा शिष्य की प्रकृति को जाँच करके कि उसके अन्तर में क्या हो रहा है, उसका उसी ही के अनुसार इलाज करता है। इसलिये कहा गया है कि शिष्य को चाहिए कि वह अपने मन का पूरा हाल गुरु को कह दे :—

'पाप पुन्न पलरा भये, सुरत भई डाँड़ी।
ज्ञान दुसेरी डारि के, पूरा करु आई।'

पाप-पुण्य तराजू के दो पलड़े हैं और सुरत डंडी है। इन दोनों को बराबर करने के लिए ज्ञान का दोसेरा डाला जाता है। पाप और पुण्य क्या है? तुम्हारे अपने मन के विचार ही पाप-पुण्य हैं। तुम एक चीज़ को जब पाप समझते हो, तो उसका प्रभाव पाप ही होगा। जिसे तुम पुण्य समझते हो, उसका प्रभाव पुण्य होगा। पाप-पुण्य समय के अनुसार बदलते रहते हैं। पहिले ज़माने में हिन्दुओं में एक राजा होता था। लोग उसे ईश्वर का रूप समझते थे, उसका

मौन करते थे। उसकी आज्ञा मानना पुण्य माना जाता था, आज्ञा न मानना पाप। मगर आज क्या है? अब राजाओं अर्थात् प्रधानमन्त्रियों के पुतले जलाये जाते हैं। उनको पीटा भी जाता है। मैं पाप-पुण्य को नहीं मानता, परन्तु फिर भी मैं सांसारिक मर्यादा को तोड़ता नहीं।

जब आदमी मरते समय अपने अन्तर में जाता है, तो मन उसके साथ होता है। जो-2 उसने ज़िन्दगी में किया होता है, वह उसके सामने आता है। उसके सामने शकलें, रूप या कोई विचार आते हैं। जिस व्यक्ति को जीते-जी यह ज्ञान हो गया होता है कि यह सब माया है, वह उन शकलों और रूपों की ओर खिचेगा नहीं, क्योंकि गुरु का ज्ञान उसके सामने आयेगा कि यह यमराज आदि कुछ नहीं, वे सब भाग जायेंगे।

'सन्त चले सतलोक को, छोड़ा संसारी॥'

किस संसार को छोड़ोगे। संसार सम और सार को कहते हैं। सम का अर्थ है बराबर। जो हमारे अन्तर में असली वस्तु सार है, उसके सामने और जो कुछ आता है, शकलें, रूप इत्यादि, वह संसार है। सार हम और तुम हो। तुम कौन हो? जो चीज़ तुम्हारे अन्दर प्रकाश को देखती और शब्द को सुनती है, वह सार है और उसके सामने बाकी जो कुछ आता है वह संसार है। जब तक संसार नहीं छूटेगा कोई भी व्यक्ति माया और काल के चक्कर से नहीं निकल सकता। पता नहीं कि मेरा अन्त कैसे हो? मगर इस समय मुझे इस बात की खशी है कि मैंने इस भेद को समझ लिया है। यद्यपि अब भी मेरा यह संसार है। मैं इस समय आपको सत्संग करा रहा हूँ, आप सुन रहे हैं। यह माया नहीं तो और क्या है? फिर भी मैं इस संसार में

फँसता नहीं। जब तक जीवन है, इस संसार में रहो, तुम संसार से बच नहीं सकते और न ही माया से दूर जा सकते हो। संसार से भाग कर जाओगे कहाँ? जब तक तुम्हारा मन है, वह कुछ न कुछ सोचता ही रहेगा, परन्तु इसके रूप को समझकर न फँसना ही सार भेद है। यही जीवन्मुक्ति अवस्था है, यही सारे धर्मों का लक्ष्य है :—

कुन्दन भये दरबार में, प्रभु नज़र गुज़ारी।
कहें कबीर बैठो सही, सिख लेहूँ हमारी।
काल कलप व्यापै नहीं, इहै नफ़ा तुम्हारी।

कबीर कह रहे हैं कि भाई मेरी नसीहत को मानो। तुम्हें नाम का यही लाभ होगा कि तुम्हें काल-कर्म व्यापेगा नहीं। काल कहते हैं समय को, समय का प्रभाव तुम्हें फँसायेगा नहीं, बल्कि तुम्हें पार ले जायेगा। मैंने आपको बहुत कुछ बता दिया, बहुत समझा दिया, कोई कसर नहीं छोड़ी। जो कुछ आज तक मेरी समझ में आया और जो कुछ मैंने अपने जीवन में सीखा, वह सब आपको बता दिया। मैं आपको शुभ भावना देता हूँ कि जिस इच्छा को लेकर आप यहाँ आये हैं, वह पूरी हो जाय।

सबको राधास्वामी!

हमें भी दो तार

परमसन्त हज़ूर मानव दयाल ज़ी महाराज

का

15-6-89 को रामगढ़ में दिया गया

सत्संग

हमें भी दे तार लाखों तारे, दयाल दाता कृपाल स्वामी ।
लगा दे भव जल के अब किनारे, दयाल दाता कृपाल स्वामी ।
न हो किसी से हमारा नाता, न हम किसी का सहारा ढूँढ़ें ।
रहें सदा तेरे ही सहारे, दयाल दाता कृपाल स्वामी ॥
न मोह माया का मन में खटका,न काल और कर्म का हो झटक
निवास कर मन में अब हमारे, दयाल दाता कृपाल स्वामी ॥
दे प्रेम भक्ति का दान हमको, न दे तू सन्मान मान हमको ॥
यही है बिनती हमारी निसदिन,दयाल दाता कृपाल स्वामी ॥।
दे खोल दृष्टि तुझे पिछानें, दरस परस करके तुझको मानें ।
उदय हों घट में सूर चन्द्र तारे, दयाल दाता कृपाल स्वामी ॥
अलख अगम का दिखा तमाशा, दिलादे निजधाम में तू बासा।
चरणकमल के रहें सहारे, दयाल दाता कृपाल स्वामी ॥
जपूँ सदा मन से राधास्वामी, कहूँ सदा मुख से राधास्वामी।
दिला दिला नाम धन दुलारे, दयाल दाता कृपाल स्वामी ॥

नन्दितानि दिगन्तानि यस्यानन्दाम्बुबिन्दुना ।
पूर्णानन्दं प्रभुं वन्दे स्वानन्दैक्यस्वरूपिणम् ॥

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप रामगढ़ निवासी और श्री जगन्नाथ जी परिवार के प्रिय, आत्मसंगियो ! आज हम यहाँ पर महाराज जी के परमप्रिय, सन्तगति में रहने वाले श्री जगन्नाथ जी के तीसरे सालाना भण्डारे पर इकट्ठे हुए हैं। वैसे तो हमारे वेदों में, उपनिषदों में, भगवद्गीता में, हमारी संस्कृति का, हमारे धर्म का, हमारे दर्शन का निचोड़ है ही, लेकिन हर युग के अन्दर जब भी हम अपनी संस्कृति को भूल जाते हैं तथा यह भी भूल जाते हैं कि हम इस जगत् में किसलिये आये हैं, उस समय परमतत्त्व राधास्वामी दयाल जीवों को चिताने के लिए मनुष्य का रूप धारण करके आता है। चिताने का क्या अर्थ है ? चिताने का अर्थ है—जगाना या याद दिलाना। याद उस ही चीज़ की दिलाई जाती है जिसको मनुष्य या जीव भूल जाता है। सद्गुरु राधास्वामी आपको चिताता है कि आप इस जगत् में दुःख भोगने के लिए नहीं आये हो, बल्कि आनन्द का अनुभव करने के लिए आये हो। इस जगत् के अन्दर जो तुम्हें दुःख दिखाई दे रहा है, असल में वह दुःख नहीं है। उस दुःख के पीछे परमसुख है। मैंने आपके सामने एक मंगलाचरण रखा है :—

नन्दितानि दिगन्तानि यस्यानन्दाम्बुबिन्दुना।
पूर्णानन्दं प्रभुं वन्दे स्वानन्दैक्यस्वरूपिणम् ॥

वह मालिक, परमतत्त्व, पूर्णपुरुष, जिसके अन्दर पूर्ण आनन्द है, आपके अन्दर ही मौजूद है। संसार के सभी धर्म कहते हैं कि वे आपको सच्चिदानन्द से मिला देंगे, लेकिन वह सच्चिदानन्न है कहाँ ? सच्चिदानन्द तो आप स्वयं हैं। सत् आपका शरीर है। क्योंकि सत् नाशवान् नहीं है। वह

अविनाशी है। आपका शरीर भी तो अविनाशी है। शरीर के पाँच तत्त्व तन्मात्राओं से बने हैं। तन्मात्राएँ विश्वव्यापी अहंकार से पैदा होती हैं। विश्वव्यापी अहंकार तीन गुणों से पैदा होता है—(1) सतोगुण (2) रजोगुण तथा (3) तमोगुण। तीनों प्रकृति के पहलू हैं और यह प्रकृति परमतत्त्व से प्रेरित होती है, इसी तरह से शरीर भी परमतत्त्व से सम्बन्धित है। जगत् में कोई भी चीज़ ऐसी नहीं, जो परमतत्त्व से सम्बन्धित न हो। एक बड़ी विचित्र बात आपको बताता हूँ। आप श्मशान में जाते हैं। आप देखते हैं कि मरने वाले की चिता जलाई जा रही है, लेकिन यह बात कोई नहीं सोचता कि हमें भी एक दिन मरना है। क्यों? क्योंकि आपकी आत्मा कह रही है कि मृत्यु है ही नहीं। मृत्यु अशुभ नहीं है। शरीर का पाँच तत्त्वों में बिखर जाना, उसके अन्दर बैठे हुए अविनाशी तत्त्व का मुक्त हो जाना शुभ है। मृत्यु अपने आप में न शुभ है न अशुभ है। अविनाशी तत्त्व तो आपके अन्दर मौजूद है, लेकिन उस अविनाशी तत्त्व के लिए बाहर आनन्द है, परमानन्द है। इस जगत् के अन्दर आप सत्, चित्, आनन्द का अनुभव करते हैं। यह सच्चिदानन्द पूर्णानन्द से आया है। आपको उस पूर्णानन्द से मिलना है। उस पूर्णानन्द का अंश भी आपके अन्दर मौजूद है। पूर्णानन्द के आधारभूत प्रभु कौन हैं? प्रभु भवजल से पहिले आता है। इस जगत् के बनाने से पहिले आता है और जगत् को बनाने के बाद भी मौजूद रहता है। वह प्रभुतत्त्व, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में भी मौजूद होता है। वह तुम्हारे शरीर के समाप्त हो जाने के बाद भी मौजूद रहता है, वह तुम्हारी अपनी सुरत ही अविनाशी तत्त्व है। सुरत को हम पूर्णानन्द कहते हैं। वह हमेशा पर्णानन्द की अवस्था में रहती है। ऐसे मालिक

को, ऐसे सद्गुरु परमतत्त्व को मैं नमस्कार करता हूँ।

परमतत्त्व का क्या अर्थ है? परमतत्त्व का अर्थ है, जो तुम्हें दिखाई देता है। तुम्हारी आत्मा तुम्हारी सुरत कह रही है कि मैं अमर हूँ। मैं मरूंगी नहीं। पर्दे के पीछे बैठे हुए, अविनाशी तत्त्व के प्रभाव से आपको अभयदान मिल जाता है। लेकिन उसको जगाने के लिए, प्रेरित करने के लिए और उसका अनुभव करने के लिए, परमतत्त्व की आवश्यकता होती है। अब सत्संगी और सद्गुरु दोनों ही परमतत्त्व हैं। जब सत्संगी सद्गुरु को पहिचान कर, उससे प्रेम करता है तो उसको जगत् से मोह नहीं रहता है।

"गुरु मिला तब कहा कमाना।"

सद्गुरु के मिलने पर आपको साधन करने की भी ज़रूरत नहीं है। गुरु शरीरधारी नहीं है। राधास्वामी या सन्तमत, सनातन धर्म की आखिरी कड़ी है। इसको आप मानवता धर्म भी कह सकते हैं। सन्तमत की खासियत यह है कि यह प्रेम का मत है अर्थात् प्रेम का मार्ग है, त्याग का मार्ग नहीं है। गृहस्थ में रहते हुए, आपको परमतत्त्व का अनुभव हो जायेगा। जाग्रत अवस्था में रहते हुए, आपको उस सुख तथा आनन्द का अनुभव हो जायेगा जो गहरी नींद में होता है। स्वप्न अवस्था में आपका अविनाशी तत्त्व, स्थूल शरीर से बाहर निकल जाता है, जिससे आपको मानसिक अनुभव होता है। फिर चेतना होती है। चेतना से निकलकर, अविनाशी तत्त्व आत्मा के अन्दर पहुँच जाता है, जहाँ चेतना भी नहीं होती है। गहरी नींद में स्थूल भी समाप्त और सूक्ष्म भी समाप्त। जाग्रत अवस्था में सभी झगड़े हैं, कोई मित्र है कोई शत्रु है। कोई सास है कोई बहू है। लेकिन गहरी नींद के अन्दर कोई झगड़ा नहीं होता।

नींद उस सुख, आनन्द की अवस्था है, जो हमारी रग-2 के अन्दर मौजूद है। इसलिये गहरी नींद के अन्दर सुरत शरीर के दुःख-सुख से निकलकर अपने कारणशरीर में लीन एवं आत्मा में ठहर जाती है, जहाँ सुख-दुःख, शत्रु-मित्र नहीं होते। इस गहरी नींद की अवस्था में, जो हालत होती है, यदि वह हालत जाग्रत अवस्था में हो जाये तो आपके लिए दुःख, दुःख नहीं रहेगा। आपके शरीर के पीछे मन, मन के पीछे आत्मा अर्थात् आनन्द है और आनन्द के पीछे परमानन्द है। यह परमानन्द जगत् के अन्दर फैला हुआ है।

मैं आपको बता रहा था कि त्याग का मतलब क्या है? त्याग का मतलब है कि जगत् की नाशवान् चीज़ों से हमारा मोह नहीं रहे। यह मोह तभी नहीं रहेगा, जब आपका प्रेम सद्गुरु के साथ हो जायेगा। सन्तमत के अनुसार काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार समाप्त नहीं होते हैं, बल्कि मनुष्य सद्गुरु को आत्मसमर्पण करके इन पाँचों में फँसता नहीं। जिसने अपने आपको सद्गुरु को दे दिया, वह दुनिया को भूल जायेगा। पहिले तो सत्संगी सद्गुरु को प्यार करता है। फिर प्यार करते-2 सत्संगी और सद्गुरु दोनों एक हो जाते हैं। यह रास्ता ग्रहण का है। बुल्लेशाह ने कहा है :—

"बुल्लया रब दा की पावणा, इत्थों पुटणा ते उत्थों लावणा"

लेकिन मेरा मत है कि यदि आपका मन सद्गुरु से लग गया, तो आपका मोह संसार से अपने आप ही छूट जायेगा। जब आपका ध्यान सद्गुरु में लग जाता है तो ध्यान रिस-2 कर नाम में बदल जाता है। कलियुग में नाम ही आधार है। यहँ सारा जगत् नाम और रूप पर आधारि है। नाम क्या है? नाम है 'शब्द'। जगत् शब्द है। ज

के अन्दर शब्द है। हवा के अन्दर शब्द है। सबका आधार शब्द है परन्तु पूर्ण शब्द है आकाश। आकाश के अन्दर सब चीज़ें मौजूद हैं। मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह सब आकाश के अन्दर मौजूद है। इसलिये शब्द है नाम। जब तुम सत्संग में जाओगे और गुरु से प्रेम करोगे, तो वह तुम्हें नाम देगा। उस नाम को जपने के बाद फिर सद्गुरु तुम्हें अन्दर का नाम देगा। अन्दर का नाम या शब्द जगत् के अन्दर फैला है अर्थात् पूर्णानन्द की अवस्था में फैला है। वह नाम क्या है? वह नाम है 'राधास्वामी' नाम।

'शब्द गुप्त जहाँ धारिया, राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहीं पावई, जहाँ कोई विश्राम॥'

वेदों और उपनिषदों के अन्दर भी बताया गया है कि यह लारा जगत् शब्द से निकला है; लेकिन शब्द परमतत्त्व से आया है। शब्द गुप्त रूप में है। शब्द के बाद रूप आता है। रूप राधा है। सबसे पहिले शब्द आया, शब्द के बाद प्रकाश आया और प्रकाश से देवता आदि निकले। शब्द को कहते हैं 'नाम' और प्रकाश को कहते हैं 'रूप' :—

'नाम रूप दोऊ ईश उपाधि।
अकथ अलीह अनन्त अनादि॥'

वह अपने आप में गुप्त है। जो अपने आप में गुप्त है, उसे आप परमतत्त्व, अविनाशी, अनामी, दयाल कुछ भी मान लो वह ही हमारा लक्ष्य है। वह अविनाशी परमतत्त्व अपने निजधाम में बैठा हुआ इस नाम-रूप के जगत् में हमारी कोई मदद नहीं कर सकता, जब तक कि वह मनुष्य के चोले में नहीं आता। वह जब इस जगत् के अन्दर मनुष्य बनकर आयेगा, तब ही तुम्हारा काम बनेगा, वह तुम्हारे दुःख-सुख को सुन सकेगा। अगर तुम इस जगत् के अन्दर

सुरत शब्द में रहते हुए विश्राम पाना चाहते हो, अर्थात् निजधाम जाना चाहते हो, तो उस सत्पुरुष दयाल को दिलो-जान से प्यार करो तब तुम्हें उसकी दया व मेहर मिलेगी। यह दया-मेहर का रास्ता है। बिना सद्गुरु की दया के तुम निजधाम में विश्राम नहीं पा सकते।

'रोम-2 रग-2 मेरी बोली, राधास्वामी-2 घुण्डी खोली।'

वह मालिक तुम्हारे रोम-2 में मौजूद है। महाराज जी के मिलने के बाद नाम मेरी रग-2 में समा गया था। मैं जब ऐसी मस्ती में चलता था, तो एक प्रकार की धुन मुझे सारे शरीर में सुनाई देती थी। इसको कहते हैं :—

'ज़िन्दगी का साज़ भी क्या साज़ है।
बज रहा है और बेआवाज़ है ॥'

राधास्वामी परमतत्त्व ने राधास्वामी की घुण्डी तब खोली, जब तुम प्रेममय हो गये। यह प्रेम की पराकाष्ठा की अवस्था है। सत्संगी जब इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तब सद्गुरु और सत्संगी एक हो जाते हैं और जड़-चेतन की गाँठ खुल जाती है। इसलिये मैंने आज का जो शब्द चुना है वह इस प्रकार है :—

'हमें भी दे तार लाखों तारे,
दयाल दाता कृपाल स्वामी।'

इस जगत् में आना एक रोग ही है। अहंकार और भी बड़ा रोग है। यह अहंकार चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यों न हो चाहे शारीरिक हो, चाहे मानसिक हो, चाहे आत्मिक हो इस अहंकार से आपको ज्ञान नहीं हो सकता। आप तीन तापों से बच नहीं सकते :—

'तीन ताप से जीव दुःखी हैं, निबल अबल अज्ञानी।
तेरा काम दया का भाई, नामदान दे दानी ॥'

तीन ताप क्या हैं ? तीन ताप हैं शरीर का दुःख, मन का शोक और आत्मा का अज्ञान। तीन ताप से छुटकारा कैसे मिले ? ये तीन ताप जगत् के अन्दर हैं। जगत् का मालिक काल है। अगर तीन ताप से बचना है तो दयाल देश में चले जाओ। यदि तुमने भारत में कोई जुर्म किया है और तुम लन्दन चले जाते हो, तो वहाँ तुम्हें सज़ा नहीं मिलेगी क्योंकि भारत के कानून लन्दन में लागू नहीं होते। इसलिये तुम दयाल के पास चले जाओ। दयाल के दरबार में जाने से तुम्हें काल के दरबार में जाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। तुम दयाल सद्गुरु के सामने सच-2 कह दो, अपना गुनाह मान लो, वह तुम्हें माफ कर देगा। जब सद्गुरु मिल गया, तब तुम्हें कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है बशर्ते कि उसकी आज्ञा पर चलो। गुरु के पास बैठने से, सत्संग सुनने से तुम्हारे कपाट खुल जायेंगे। यह बहुत आसान रास्ता है। अब बात इतनी सी है कि अहंकार कैसे जाये ? काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार समाप्त नहीं होते बल्कि इनका रूप बदल दिया जाता है। काम कहते हैं इच्छा को :—

'काम-2 सब कोई कहे, काम न चीन्हे कोय।
जेती मन की कामना, काम कहावे सोय ॥'

काम का असली अर्थ नहीं समझा जाता। वास्तव में, काम का मतलब केवल कामतृप्ति नहीं है। काम का दूसरा नाम मन की कामना या वासना या मन की इच्छा है। इस व्यापक दृष्टि से, कोई भी व्यक्ति किसी भी समय काम के बिना, वजूद नहीं रख लकता। इसलिये काम के रुख को ईश्वर-प्रेम में बदल देने से व्यक्ति परमतत्त्व को प्राप्त करने का साधन बन जाता है।

क्रोध से हज़ारों बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। बजाय इसके कि तुम क्रोध से बीमारियाँ पैदा करो, तुम्हें क्रोध इस बात पर होना चाहिए कि तुम सद्गुरु से सच्चा प्रेम क्यों नहीं कर रहे? तुम सच्चे क्यों नहीं बन रहे? तुम गुरु की आज्ञा पर क्यों नहीं चल रहे? अपने आप पर क्रोध करो। लोभ इस बात का करो कि आप ज़्यादा से ज़्यादा समय गुरु के नज़दीक बैठो। कबीर साहिब ने कहा है—गुरु के रोज़ाना दर्शन करो। यदि रोज़ाना दर्शन नहीं कर सकते तो हफ्ते में दो बार करो। हफ्ते में दो बार नहीं कर सकते तो 15 दिन में एक बार करो, वरना एक महीने में दर्शन करो। एक महीने में भी नहीं कर सकते, तो 6 महीने में एक बार करो। यदि 6 महीने में भी नहीं कर सकते तो साल में एक बार अवश्य करो। इस लोभ से दुनिया के सारे लोभ समाप्त हो जायेंगे। अहंकार इस बात का होना चाहिए कि आप अपने दाता दयाल सद्गुरु के सत्संगी हो। जो सर्वाधार है। अहंकार इस बात का करो कि वह आपका है और आप उसके हो। आपका अहंकार आत्मगौरव में बदल जायेगा। आपको अभयदान मिल जायेगा। मोह का मतलब है ताल्लुक। बच्चों से मोह होता है, लेकिन दाता दयाल जी महाराज क्या कहते हैं :—

'न हो किसी से हमारा नाता, न हम किसी का सहारा ढूँढें।
रहें सदा तेरे ही सहारे, दयाल दाता कृपाल स्वामी।।'

इस जगत् के अन्दर रिश्ते-नाते होते हैं। मैं यह नहीं कहता कि प्यार मत करो या किसी की भलाई मत करो। प्यार भी करो, दूसरों की भलाई भी करो। लेकिन जिनसे तुम प्यार करते हो, जिन लोगों का भला करते रो, उन्हीं से तुम्हें धोखा मिलेगा :—

'सुर नर मुनि सब की यह रीति।
स्वारथवश करिहैं सब प्रीति ॥'

लेकिन तुम सबकी भलाई बिना किसी इच्छा के करते चले जाओ। असलियत में भलाई करने वाली तो कोई और शक्ति है। यदि कोई सोचे कि दुनिया से भलाई मिलेगी, तो मूर्खता है। तुम किसीके साथ दस बार भलाई करो, यदि एक बार नहीं करोगे तो आपको बुराई मिल जायेगी और पिछले किये पर भी पानी पड़ जायेगा। जो वास्तव में भले हैं, वे दूसरों में बुराई नहीं देखते हैं। सद्गुरु से तुम्हारा सम्बन्ध सच्चा है। सद्गुरु के अन्दर स्वार्थ नहीं होता। वह आपसे बदले में कुछ नहीं चाहता। उसको तुम्हारे पैसे की भी ज़रूरत नहीं है।

'शिष्य को ऐसा चाहिए गुरु को सब कुछ देय।
गुरु को ऐसा चाहिए शिष्य से कुछ नहीं लेय ॥'

यह सही बात है कि दान आपके मन को पवित्र करता है। वह तुम्हारे कल्याण के लिए तुमसे दान दिलवाता है। स्वामी जी महाराज ने कहा है :—

'पर तेरा उपकार करावें, भूखे नंगे को दिलवावें।'

जो गुरु शिष्य का दान लेते हैं और उनकी समस्याओं का समाधान नहीं करते, वह घोर नरक में जाते हैं :—

'हरहिं शिष्य धन रोग न हरहीं।
सो गुरु घोर नरक में परहीं ॥'

सद्गुरु दुःखी लोगों के दुःख को दूर करने के लिए तथा गिरे हुए लोगों को ऊपर उठाने के लिए आता है। तुम उसे प्यार करते हो, वह तुम्हें प्यार करता है। मालिक तुम्हारे अन्दर आंशिक रूप में रहता है :—

'न मोह माया का मन में खटका,
न काल और कर्म का हो झटका।
निवास कर मन में अब हमारे,
दयाल दाता कृपाल स्वामी ॥'

यदि आपने अपने आपको उसके सुपुर्द कर दिया तो वह आपको अवश्य सम्भालेगा, उसकी ज़िम्मेवारी है। मैंने आपको बताया कि अहंकार उसे दे दो। आपकी मोह-माया सब समाप्त हो जायेगी।

लोग मन्दिर में जाते हैं और अपने इष्टदेव को भेंट चढ़ाते हैं। भेंट चढ़ाना, दान देना है। दान देने से मन शुद्ध होता है। जब ईश्वर के प्रति कुछ भेंट की जाती है, उससे मानसिक तुष्टि तो होती है, किन्तु ईश्वर को हमारी भेंट की कोई ज़रूरत नहीं होती। वह पूर्ण है। जगत् का स्वामी है। उसको हम ऐसी कौन सी चीज़ दे सकते हैं, जो उसके पास नहीं है। हम लाख-दो लाख या करोड़ रुपया भी ईश्वर को समर्पित कर दें, फिर भी हम उसे अपनी ओर से कोई ऐसी वस्तु नहीं दे रहे, जो उसके पास न हो। चाहे इस पृथ्वी की सारी सम्पत्ति या हीरे-जवाहरात ईश्वर को भेंट कर दिये जायें, तब भी हम उसे कोई ऐसी वस्तु नहीं दे रहे जो हमारी हो और उसकी न हो। अगर कोई वस्तु हमारी अपनी है, जिसको हमने पैदा किया है, वह हमारा अहंकार है। जब कोई भक्त अपना अहंकार भी मालिक को समर्पित कर देता है और कहता है कि मैं नहीं हूँ, तो उस समय मालिक पुरुष होने के नाते, उसके इस त्याग पर विचार करता है। इसमें कोई शक नहीं कि परमतत्त्व दयाल पुरुष, पुरुष है। पुरुष वह होता है, जिससे आदान-प्रदान किया जाता है। वह हमारी पुकार को सुनता है और उसका उत्तर

भी देता है। वह पुरुष मनुष्य की तरह सीमित नहीं है लेकिन वह मनुष्य की भांति हरएक पुकार से प्रभावित होकर, पुकार करने वाले भक्त पर दया और करुणा करता है। इसी सच्चाई को दाता दयाल जी ने नीचे दिये गये शब्द में बहुत सुन्दर रूप से बयान किया है :—

'सन्त सतगुरु तुझको कहते, हैं नहीं मैं जानता।
मेरी दृष्टि में दया करुणा, का तू भण्डार है॥'

दया की धारा से तो वह भक्त के सभी अपराधों को क्षमा कर देता है और करुणा के कारण उससे महानुभूति करता है और उसे सभी दुःखों से मुक्त करने का प्रयास करता है। जब भक्त यह कह देता है कि मेरी 'मैं' ले लो, मेरा अहंकार ले लो, तो मालिके कुल इस प्रकार सोचता है "इस भक्त ने पहिले धन को त्यागा, सम्पत्ति को त्यागा सम्बन्धियों को त्यागा और मेरी भक्ति में रत हो गया। अब इसने अपना अहंकार भी त्याग दिया है। जब इसका अहंकार नहीं रहेगा, तो दुनिया का अहंकार इसे कुचल डालेगा।" ऐसा करुणामय विचार करने के बाद मालिक स्वयं भक्त का अहंकार बन जाता है और उसके सारे काम मौज करती है। इस प्रकार भक्त मोह और माया से मुक्त हो जाता है और उसके कर्म कट जाते हैं। किन्तु यह तभी होता है, जब भक्त सच्चे दिल से मालिक से प्रार्थना करता है मालिक स्वयं उसके मन में निवास करे। यह बात साफ है कि मालिक उसके मन में तभी निवास करेगा, जब उसका मन अहंकार से खाली होगा :—

दे प्रेम भक्ति का दान हमको,
न दे तू सन्मान मान हमको।
यही है बिनती हमारी निसदिन,
दयाल दाता कृपाल स्वामी॥'

अहंकार को समर्पित करना भी एक कठिन काम है, क्योंकि इसमें त्याग करना पड़ता है। अहंकार का त्याग करना इसलिये कठिन है कि अहंकार बहुत सूक्ष्म रूप से हमारे दिन भर के कर्मों में छुपा रहता है। कई बार अहंकारी व्यक्ति को पता ही नहीं चलता कि वह किसी काम को अपने अहंकार की तृप्ति के लिए कर रहा है। एक गुरु भी अपने शिष्यों को नामदान देते हुए, शायद अपने इस अहंकार को सन्तुष्ट कर रहा है कि वह कई चेलों का गुरु है। सन्तमत में इस अहंकार से बचने के लिए पराभक्ति और पराप्रेम का रास्ता है। यही ग्रहण का रास्ता है। इष्ट को सब कुछ मान लेने से और उससे सच्ची भक्ति और सच्चा प्रेम करने से मान-सन्मान का कोई मूल्य नहीं रहता और अहंकार लुप्त हो जाता है।

'दे खोल दृष्टि तुझे पहिचानें,
दरस परस करके तुझको मानें।
उदय हों घट सूर चन्द्र तारे,
दयाल दाता कृपाल स्वामी ॥
अलख अगम का दिखा तमाशा,
दिला दे निजधाम में तू बासा।
चरण कमल के रहें सहारे,
दयाल दाता कृपाल स्वामी ॥
जपूँ सदा मन से राधास्वामी,
कहूँ सदा मुख से राधास्वामी।
दिला दिला नाम धन दलारे,
दयाल दाता कृपाल स्वामी ॥'

सन्तमत या राधास्वामी मत की भक्ति में विशेषता यह है कि वह पूर्ण भक्ति का मार्ग है। वह सगुण भी है और निर्गुण भी है। ईश्वर के व्यापक रूप की तरफ ध्यान लाना

अर्थात् उसके उस निर्गुण पहलू की तरफ ध्यान जाना जो हर वस्तु में, हर जीव में और हर जगह मौजूद है, इस अनुभव को अन्तर की दृष्टि का खुलना कहते हैं। ईश्वर की व्यापकता का आभास ही दृष्टि का खुलना है। इस व्यापकता का अनुभव बाद में होता है। इससे पहिले जीवित-जागृत सद्गुरु को इष्ट बनाकर, उसकी पाँच प्रकार की सेवा, गुरु के प्रेम को परिपक्व बनाती है। निर्गुण व्यापक परमतत्त्व को गुरु में साक्षात् विराजमान मानकर, उसका आँखों से दर्शन करना, उसके पाँव को स्पर्श करना, उसकी वाणी को सुनना, उसके द्वारा दिये गये प्रसाद को चखना और उसके द्वारा स्पर्श किये गये फूलों को सूँघना, सगुण की भक्ति है। यह पाँच प्रकार की बाहरी भक्ति और चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार सभी को मालिक के प्रेम से ओतप्रोत करने की आन्तरिक भक्ति मिलकर नवधा भक्ति कहलाती है। यह पूर्ण भक्ति है।

राधास्वामी मत या सुरत-शब्द योग में सतलोक या सत्पुरुष से मिलाप करने के पश्चात् भी अलख और अगम के दर्जों से गुज़रना पड़ता है। अलख लोक में प्रकाश कम और शब्द अधिक होता है। अगम लोक में शब्द ही शब्द होता है। अगम पुरुष के मिलने पर या अगम लोक में निवास करने पर भक्त केवल ऐसे शब्दब्रह्म में विलीन हो जाता है, जहाँ पर जाप, सुमिरन, ध्यान और भजन भी समाप्त हो जाता है। इस अवस्था में जब तक वह शब्द में विलीन रहता है, वह काल से मुक्त रहता है। कबीर साहिब ने इसी अनुभव को बताते हुए कहा है :—

'जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, वाको काल न खाय॥'

यह अवस्था शब्दाभ्याय की सबसे ऊँची अवस्था मानी

जाती है। किन्तु यह अवस्था केवल समाधि तक ही सीमित रहती है। कई शब्दाभ्यासी इसी अहंकार में मारे जाते हैं कि वह शब्द में विलीन हो सकते हैं। यह भी एक प्रकार अहंकार है और आसक्ति है। इसलिये दाता दयाल जी महाराज कहते हैं कि अलख अगम की अवस्था भी अधूरी है। आखिरी अवस्था वह है जिसमें सत्संगी जीवन्मुक्ति के अलावा विदेह मुक्त हो जाता है। उसमें 'मैं' और 'तू' दोनों समाप्त हो जाते हैं। भक्त और भगवान् एक हो जाते हैं। सत्संगी, सत्संगी नहीं रहता। सद्गुरु, सद्गुरु नहीं रहता। दोनों सत् में समाविष्ट होकर एक दूसरे में ओत-प्रोत हो जाते हैं। यही निजधाम या परमधाम में निवास है।

इस अवस्था में रहने वाला परमसन्त या परमभक्त मन, वचन और कर्म से जो कुछ भी सोचता, बोलता या करता है, वह केवल मौज ही होती है और सहज गति होती है। नाम का आखिरी मासकिन या आखिरी दर्जा यही है कि भक्त कुछ न करता हुआ भी सब कुछ करता है। उसे पता चल जाता है कि मालिक उसमें नहीं वह मालिक में रहता है। परम दयाल जी महाराज ने पिट्सवर्ग, अमेरिका में मुझे आखिरी सत्संग देते हुए कहा था, "मानव दयाल! अब तू जीवन्मुक्त अवस्था में है। तेरी 'मैं' मालिक की 'मैं' में अर्थात् 'तू' में बदल गई है तू जीवन्मुक्त अवस्था में मालिक को हाज़िर-नाज़िर समझते हुए व्यापक प्रेम का अनुभव कर रहा है। लेकिन इससे भी आगे की वह अवस्था जहाँ तू और मैं दोनों नहीं रहेंगे, वह अवस्था तुम्हें तब मिलेगी जब तुम अपने अनुभव को सत्संगों द्वारा बाँ कर सत्संगियों को महान् सेवा करोगे। तब तुम कब

साहिब के इस शब्द को पूरी तरह समझ जाओगे, जिसमें कहा गया है :—

'माला फेरूँ न हर भजूँ, मुख से कहूँ न राम।
मेरा राम मुझको भजे, तब पाऊँ विश्राम ॥'

मेरे अनुभव के आधार पर दाता दयाल जी के इस शब्द का मतलब मैंने आपको बता दिया। इस पर अमल करना या न करना आपकी इच्छा पर निर्भर है।

सबको राधास्वामी !

आवश्यक सूचना

सभी मानव मन्दिर पत्रिका पढ़ने वालों को सूचित किया जाता है कि उनके आजीवन सदस्यता के क्रमांक बदल रहे हैं, अतः जब कभी भी पत्रिका के सम्बन्ध में पत्राचार करना हो तो अपना नया क्रमांक अवश्य लिखें।

सम्पादक

यदि इतना प्यार मिलता रहे, तो मैं बार-२ जन्म लेने को तैयार हूँ

परमतत्त्व के अवतार, मालिके कुल, परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जौं महाराज के सम्पर्क में हम 24 सितम्बर 1963 में आये। हम 24 सितम्बर को ही अपनी पहिली अमरीकी यात्रा से देहली पहुँचे थे। हमें हमारे बहनोई श्री रमेश चन्द्र शर्मा जो परम दयाल जी के शिष्य थे उनके पास पहिली बार ले गये। परम दयाल जी महाराज उस दिन हिन्दु महासभा के भवन में सत्संग दे रहे थे। हजूर मानव दयाल जी महाराज उनको देखकर दंग रह गये और मुझसे बोले, "भाग्य ! यह तो वही महात्मा हैं जिनके दर्शन मैंने 1959 में स्वप्न में किये थे और उसके विषय में मैंने तुम्हें उसी समय बताया भी था।" उसके कुछ क्षण बाद जो चमत्कारी घटना तब घटी जब उन्होंने दूर से हमें देखकर ज़ोर से कहा, "आखिर तुम आ ही गये शर्मा दी ग्रेट, मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा में था।" हम चकित रह गये हमने तो आज से पहिले न तो उनके विषय में कुछ सुना था और न ही उन्हें हम जानते ही थे फिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा कि वह मानव दयाल जी महाराज की प्रतीक्षा कर रहे थे। हमें उस स्टेज पर बैठे हुए, सत्संग देने वाले सन्त के परमतत्त्व के अवतार होने में तनिकमात्र भी सन्देह न रहा। पहिली ही मुलाकात में हम उनके बहुत निकट आ गये।

हम उन्हें बार-2 मिलने लगे, 1967 में जब हम अपने

छोटे लड़के के साथ अमेरिका जा रहे थे, तो देहली में हम परम दयाल जी के दर्शन करने गये, तब परम दयाल जी महाराज मानव दयाल जी को सम्बोधित करके बोले, "प्यारे आई. सी. शर्मा तुम अमेरिका में पढ़ाने के लिए एक साल के लिए नहीं जा रहे, तुम्हें इस बार वहाँ लगातार तीन साल के लिए पढ़ाना होगा। इस बार अमेरिका में तुम्हारा बहुत सम्मान होगा।" उनकी भविष्यवाणी सत्य हुई। हमें अमेरिका में तीन साल तक रहना पड़ा। इस अवधि में परम दयाल जी महाराज ने हमें दर्जनों पत्र लिखे और वह हर पत्र में यही लिखते, "अब आप दोनों को परमार्थ ही के काम में जुट जाना चाहिए और मानवता धर्म के असूलों पर चलना चाहिए।"

1970 में हम भारत वापिस लौट आये और हमारे दोनों किशोर लड़के पढ़ने के लिए वहीं रह गये। हम महाराज जी को प्राय: होशियारपुर मिलने जाते। वहाँ परमतत्त्व के अवतार हमें जो प्यार देते उसका वर्णन करना बहुत कठिन है।

1971 में हम फिर अमेरिका में चले गये और 1972 में परम दयाल जी महाराज पहिली बार स्वर्गीय पण्डित राम चन्द जी के साथ अमेरिका आये, वहाँ की धरती को पवित्र किया। उनका पहिला दौरा बहुत ही सफल रहा, उसके बाद वह चार बार फिर अमेरिका आये।

जब-2 भी महाराज जी अमेरिका आते हमारे घर वह कम से कम 15 दिन के लिए ज़रूर रहते। घर के अन्दर ही उनका मानव दयाल जी से प्राईवेट सत्संग होता।

1978 में वह फिर अमेरिका आये और 1980 में जब यह चौथी बार वहाँ आये तो हमारे घर के अन्दर अपने पलंग पर लेटे-2 बोले, "देखो मानव ! मैं यहाँ पर बसे हुए

भारतीयों या अमेरिकनों को सत्संग देने नहीं आता, मैं तो केवल तुम्हें चेताने के लिए ही आता हूँ। हे मेरे प्रिय मानव! अब तुम्हें पूरी तरह से रूहानियत के रास्ते पर चलना चाहिए। आज से तुम भाग्य से पत्नी का रिश्ता तोड़ कर, भाई-बहन की तरह रहो और दोनों मानवता धर्म के प्रचार में लग जाओ। मेरे प्यारे! आज से जितनी भी तुमसे उम्र में छोटी महिलाएँ हैं, वे तुम्हारी बेटियां हैं, तुमसे बड़ी माताएँ या बहनें हैं। इस बात को सदा ध्यान में रखना। मेरे दाता दयाज सदा तुम्हारे अंग-संग रहेंगे। दाता तुम्हें लम्बी आयु दें और तुम दुनिया का कल्याण करते रहो। यही मेरा दिली आशीर्वाद है।"

1980 की महाराज जी की यात्रा में मुझे उनके बहुत ही निकट आने का अवसर मिला। उनके प्रति मेरे जो थोड़े-बहुत सन्देह थे उनको दूर किया। एक दिन वह बहुत ही प्यार से बोले, "बेटी! तू मुझे यह बता कि क्या तुम्हें मेरा यहाँ आना अच्छा नहीं लगता? क्या तुम्हें इस बात का रंज है कि मैं तुम्हारे पति को परमार्थ के काम में लगा रहा हूँ?"

मैं पिता जी के चरणों में लोट गई और रोते हुए बोली। "हाँ, मेरे अन्तर्यामी पिता जी! मैं आपसे झूठ नहीं बोल सकती। पिता जी! मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि आप मेरे पति को अपना उत्तराधिकारी बना कर भारत वापिस ले जायँ। वह भारत चले गये तो मुझे भी बच्चों को छोड़कर भारत वापिस जाना पड़ेगा, मैं उनको छोड़ नहीं सकती। मेरे ऊपर दया करो दया के सागर! किसी और को ही उत्तराधिकारी बना दो। हम आपका काम तो सदा करते रहेंगे आपके प्रति हमारी श्रद्धा और भक्ति में भी अन्तर नहीं आयेगा, परन्तु हमें बच्चों से अलग मत

कीजिये, हमें इसी देश में ही रहने दीजिये। मेरी आपसे यही प्रार्थना है।"

इस पर परम दयाल जी महाराज बोले, "हाँ, हाँ, क्यों नहीं ? क्यों नहीं ! तुम यहीं रहो। इस ऐशो-आराम की ज़िन्दगी में फँसी रहो। तुम्हें क्या लेना-देना है परमार्थ या रूहानियत से। क्या तुम समझती हो कि मेरा काम आई. सी. शर्मा के बगैर नहीं चलेगा ! चलेगा ! हाँ खूब चलेगा ! देख लेना।"

पिता जी के इन शब्दों को सुनकर मैं उनके सामने ज़ोर-2 से रोने लगी और बोली, "हे परमतत्त्व के अवतार, मेरे पिता जी ! आप तो सब कुछ कर सकते हैं पूरी दुनिया को बदल सकते हैं। मेरे छोटे से मन को आप बदल क्यों नहीं देते ? हे मेरे भगवान् ! आप मेरे सिर पर हाथ रखकर इस बात का आशीर्बाद क्यों नहीं देते कि मेरा बच्चों से मोह न रहे। पिता जी मैं इतनी गिरी हुई नहीं हूँ। मैं भी परमार्थ के काम में लगना चाहती हूँ। बचपन में बहुत भक्ति किया करती थी आप अब मेरा मन बदल दो।"

दयालु पिता जी ने सचमुच मेरे सिर पर हाथ रखकर बड़े प्यार से कहा, "सदा सुहागिन रहो मेरी बच्ची ! तुम्हारा बच्चों से मोह धीरे-2 कम हो जायेगा। तुम भी परमार्थ का काम करोगी। देखो बेटी ! मानव दयाल जी का परमार्थ के काम में सदा हाथ बटाना। तुम पढ़ी-लिखी हो तुम्हारे संस्कार भी अच्छे हैं मन्दिर को आगे बढ़ाना मानव का सदा साथ देना।"

परम पिता जी के आशीर्वाद से मोह बहुत कम हो गया। अब जब मैं अमेरिका में बच्चों के पास जाती हूँ, उनके साथ रहने से बहुत ही आनन्द आता है। पुत्र (पोता)

की बातें सुन-2 कर मन फूला नहीं समाता, वहाँ से आने की इच्छा ही नहीं होती। माँ हूँ न आखिर! फिर से थोड़ा मोह हो जाता है बच्चों से। परन्तु क्लीवलैण्ड से न्यूयार्क तक पहुँचते-2 हवाई जहाज़ में मन पर काबू पा लेती हूँ। मन में इतना ज़रूर कहती हूँ, "मेरे बच्चो! मुझे तुम्हें छोड़कर जाना ही है। परम दयाल जी महाराज और तुम्हारे इस जन्म के शारीरिक पिता मानव दयाल जी महाराज सदा तुम्हारी रक्षा करें।" धीरे-धीरे मन सम्भल जाता है, भारत में पहुँचते-2 मैं अपने शारीरिक बच्चों को एक प्रकार से भूल ही जाती हूँ। सभी नवयुवकों में मुझे अरुण तथा प्रियदर्शी दिखाई देते हैं और नन्हे-2 तोतली भाषा बोलने वाले छोटे-2 बच्चों में पोरस दिखाई देता है। यह परम दयाल जी की कृपा है। यदि उनकी कृपा न होती, तो मैं बच्चों को छोड़कर इस रास्ते पर कभी नहीं आती। आ ही नहीं सकती थी।

एक दिन क्लीवलैण्ड के हमारे घर में पिता जी पलंग पर बैठे थे मेरे से बोले, "मैं तुमसे एक बात जानना चाहता हूँ वह यह है कि मेरा चोला छोड़ने के बाद जब आपको भारत वापिस जाना पड़ेगा, तो तुम्हारे पास अपना खर्चा करने के लिए पर्याप्त धन है या नहीं? मैं यह नहीं चाहता कि मेरा उत्तराधिकारी अपने खर्चे के लिए मन्दिर से पैसा ले या सत्संगियों पर बोझा डाले। यह मैं अपने मन की तसल्ली के लिए पूछ रहा हूँ कि क्या तुम मानवता मन्दिर का पैसा तो नहीं खाओगे।"

मैंने कहा, "पूज्य पिता जी! आप चिन्ता मत करें। हमारे पास अपना खर्चा पूरा करने के लिए पर्याप्त पैसा है। जयपुर में एक मकान है, जिसका दो हज़ार रुपया महीना

किराया आता है। मैंने राजस्थान में 15 वर्ष पढ़ाया था, कुछ पैन्शन भी आती है। यहाँ पर हमारे दो मकान हैं, जिनका किराया आता है, मानव दयाल जी महाराज की अमेरिका में प्रकाशित पुस्तकों की हज़ार-दो हज़ार रुपया महीने की रायल्टी भी आती है। पिता जी ! क्या इतना पर्याप्त नहीं हम दोनों के लिए ? बड़ा लड़का होनहार प्रोफेसर है छोटा भी दो साल में प्रोफेसर हो जावेगा। तीन साल के बाद यदि मानव दयाल जी नौकरी छोड़ भी दें तो उन्हे हज़ारों रुपये महीने की पैन्शन मिलेगी। पिता जी यदि आप आज्ञा दें तो हम आज भी स्थायी रूप से आपके पास होशियारपुर आ सकते हैं। आप आज्ञा तो दीजिए।"

परम दयाल जी का चेहरा खिल गया और वह बोले, "अरे मेरी बेटी ! मैं तो समझता था कि आई० सी० शर्मा एक मामूली सा प्रोफेसर है पैसा कहाँ होगा उसके पास ? बेटी मेरी ! तुमने मेरे मन का बोझ आज हल्का कर दिया। अब मुझे सौ फीसदी पूरा यकीन हो गया है कि तुम दोनों मन्दिर का एक भी पैसा अपने ऊपर खर्च नहीं करोगे। मेरा मन्दिर तुम्हारे हाथों सुरक्षित रहेगा। वैसे मेरे मन्दिर का एक नया पैसा नाजायज़ रूप से खाने वाला कोई भी व्यक्ति सुखी नहीं रहेगा, उसको कभी शान्ति नहीं मिलेगी। जो मन्दिर का एक रुपया खायेगा उसको दस रुपये का नुकसान होगा। प्यारी बेटी ! सही माने में सच्चा गुरु वही है, जो अपने ऊपर अपने ही द्वारा कमाया हुआ धन ही खर्च करता है। प्यारे मानव से कहना कि वह तीन साल के बाद पेन्शन लेने के बाद ही भारत में आएँ ताकि आपको कभी पैसे की किसी प्रकार की कमी नहीं रहे। मैं भारत में तुम्हारे स्थायी रूप से लौटने की प्रतीक्षा करूंगा। मैं नहीं चाहता कि मेरा एकमात्र आध्यात्मिक उत्तराधिकारी कर्मबन्धन में

फँसे और उसका फल बेचारे सत्संगियों को भोगना पड़े।"

मैंने कहा, "पिता जी ! आप निश्चिन्त रहें। हम आपकी एक-2 बात को भगवान् की ही आज्ञा मानते हैं।"

उस दिन पिता जी से और भी बहुत बातें हुईं बोले, "भाग्य ! जहाँ तक हो सके सत्संगी तो सत्संगी, आप अपने पुत्रों से भी कभी धन की सहायता मत लेना। यदि आपके पास अपना पैसा है और उस पर भी आप पुत्रों से लेते हैं, तो यह कर्मबन्धन होगा।"

इस बार जब परम दयाल जी अमेरिका से भारत वापिस लौट गये तो ऐसे लगा कि हमारे शरीर का कोई हिस्सा पूरे शरीर से अलग होकर भारत चला गया है। मानव दयाल जी ने पिता जी को लिखा, "महाराज जी ! अब यह बात मेरी समझ में पूरी तरह से आ गई कि भगवान् कृष्ण जब द्वारिका में चले गये, तो गोपियाँ क्यों तड़पा करती थीं ? हम आपके शरीर के कण-2 से प्यार करते हैं। इस बार आपकी अनुपस्थिति बहुत ही खल रही है।"

महाराज जी के चोला छोड़ने के बाद, हमें भारत में वापिस आना पड़ा। भारत में आकर सत्संगियों—कोने-2 में बसे सत्संगियों का जो प्रेम हमने पाया, उस पर तो लाखों अमेरिकाओं के सभी ऐशो-आराम तथा सुखों को न्यौछाबर किया जा सकता है।

कुछ वर्ष पूर्व जब सन्त ताराचन्द जी हमारे साथ अमेरिका गये थे, वहाँ के सुख तथा ऐश्वर्य को देखकर वह बोले थे, "मानव दयाल जी महाराज ! आप इस स्वर्ग को छोड़कर भारत कैसे लौट आए ? हैरानी है।"

मैं तो समझती हूँ कि यदि ऐसा प्यार हमें सदा मिलता रहे तो उसके आगे तो स्वर्ग के सुख भी फीके हैं दुनिया के

सुखों की तो बात ही क्या है।

मैं अभी, इस बार जब अमेरिका में आपरेशन के लिए गई, तो आपरेशन वाले दिन भारत से कम से कम 25 सत्संगियों के ट्रंककाल आये और पत्र तो कम से कम सौ-डेढ़ सौ सत्संगियों के आये। मेरे परम प्रिय बहनो, भाइयो तथा बच्चो मैं कमज़ोरी के कारण आपके पत्रों का जवाब तो नहीं दे सकी परन्तु आप जानते नहीं कि उन पत्रों तथा ट्रंककालों से मुझे कितनी खुशी हुई कितनी तसल्ली मिली। मेरे प्यारो मैं आपकी बहुत आभारी हूँ आपने मुझे अपने विचारों में रखा। मेरे जैसा सौभाग्यशाली और कौन होगा जिसको लाखों सत्संगी प्यार करते हैं। मैं भी आपको बहुत प्यार करती हूँ। पाँच साल तक लगातार बीमार रहने के कारण, मेरा क्रोध बहुत बढ़ गया था। अत: आप पर भी गुस्सा करती थी कभी-2 महाराज जी पर भी। मुझे अपने गुनाहों की सज़ा मिल गई मेरे पेट के ऊपर छुरी या कैंची चलाई गई और छ: महीने तक उसका इलाज कराना पड़ा। अब सैकड़ों पत्थरियाँ निकल गईं, स्वास्थ्य काफी ठीक है गुस्सा भी बहुत कम लगता है। अब आपसे भी क्रोध नहीं करूंगी। वैसे मैं आपको प्यार बहुत करती हूँ, परन्तु उसे ठीक तरह से दर्शा नहीं पाती। यह मेरी कमज़ोरी है। यदि मैं आपको प्यार न करती होती अपने पुत्रों, अपने रिश्तेदारों तथा अपने adopted देश को छोड़कर आपके पास मानवता मन्दिर में रहने के लिए क्यों आती? आपका यदि ऐसा प्यार सदा मिलता रहे तो मुझे मुक्ति भी नहीं चाहिए, मैं बार-2 जन्म लेने के लिए तैयार हूँ। आप लोगों का साथ रहे, आप लोगों का प्यार मिले इससे अधिक की मैं कामना भी नहीं करती।

सबको राधास्वामी!

आपकी ही भाग्य शर्मा

गुरु नानक देव जी की शिक्षा

लेखक

परमसन्त परम दयाल जी महाराज

मैं हिन्दु हूँ, ब्राह्मण हूँ, वेद-शास्त्र का मानने वाला हूँ। उस मालिक की लगन मुझे महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज के पवित्र चरणों में ले गई। उन्होंने मेरी सुरत (आत्मिकधार) को बड़ी कोशिश से ईश्वरभक्ति अथवा अन्य भक्तियों से हटा कर गुरुभक्ति या नाम भक्ति में लगाया। **बचन सार भाग दूसरा** नाम पुस्तक में, जब मैं बग़दाद में था रोज़ एक शब्द मेरे नाम लिखा करते थे। उस पुस्तक में उन्होंने मुझे सन्तमत की ओर आने की हिदायत की थी। सन्तों में सन्त कबीर, राधास्वामी दयाल तथा नानक साहिब की प्रशंसा की गई थी। हरएक सन्त के विषय में उस पुस्तक में नौ-नौ दस-दस कड़ियाँ भजनों की लिखी थीं। मैं एक सच्चाईप्रिय मनुष्य हूँ। मैंने किसी भी बात को उस समय तक सच नहीं माना, जब तक कि उसकी परीक्षा नहीं कर ली।

गुरु नानक साहिब ने क्या शिक्षा दी? सतनाम, सचखण्ड अर्थात् सतनाम का जाप और सचखण्ड में पहुँचना। ये तीन बातें सही हैं। बाकी जो कुछ उन्होंने किया या कहा वे आगे कही गई हैं। उन्होंने मालिक का नाम अकाल पुरुष

रखा। हिन्दुओं में, पूर्णमासी के दिन तथा अमावस्या के दिन का बहुत महत्त्व है। क्यों? पूर्णमासी क्या है? पूर्णमासी पर चाँद पूर्ण होता है चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश होता है परन्तु अमावस्या की रात्रि को चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा होता है।

सचखण्ड या सतनाम या अकाल पुरुष तक पहुँचने के दो मार्ग हैं। एक पूर्णमासी का और दूसरा अमावस्या का। पूर्णमासी हमारे मन की वह अवस्था है जहाँ हमारे जीवन को मानसिक तथा शारीरिक सुविधाएँ प्राप्त रहती हैं अर्थात् जीवन को खुशी से व्यतीत करने के लिए हमें जिन-2 वस्तुओं की चाहना रहती है, वे हमें प्राप्त होती रहती हैं। जिसको यह अवस्था प्राप्त होती है, वही मनुष्य इस सतनाम या सतखण्ड या अकाल पुरुष को प्राप्त कर सकता है। जिस मनुष्य को शारीरिक और मानसिक आवश्यकताएँ ही पूरी नहीं होतीं, उसकी सुरत किसी रूप में भी शान्ति से उस मंज़िल या अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकती। यह गुरु नानक का मार्ग है, पूर्णमासी का मार्ग है।

दूसरा मार्ग है अमावस्या का। ऋषियों ने देखा कि इस चीज़ को तो राजे-महाराजे या वे लोग ही जिनकी आवश्यकताएँ पूरी होती रहती हैं प्राप्त कर सकते हैं, तो उन्होंने दूसरे लोगों को त्याग के मार्ग की शिक्षा दी। सब कुछ त्याग दो, तब तुम्हें किसी वस्तु की आवश्यकता का अहसास ही न होगा। मन को सन्तोष देने के लिए दो ही बातें हैं। या तो पूर्ण रूप से हर वस्तु प्राप्त होती रहे, फिर लालसा रहेगी ही नहीं। दूसरी बात यह है कि सब कुछ त्यागते चले जाओ, धीरे-2 मन की दशा ठीक हो जायेगी। इस संसारी लोग जो इस सतनाम या अकाल पुरुष को प्राप्त

करने का यत्न करते हैं, फेल हो जाते हैं। यह करनी का (अमली) जीवन है। मन में दुनिया की आशाओं या आवश्यकताओं की चाह जब तक बाकी है, तो ध्यान करते समय सतनाम आ ही नहीं सकता। कोशिश तो हम सब करते हैं। लेकिन या तो इस मार्ग को फरिगुलबाल (सर्व-सम्पन्न) लोग ही प्राप्त करते हैं या फिर वे जो मन से पूर्ण त्यागी हैं।

यदि आज एक व्यक्ति के अन्दर अमावस्या की हालत आ गई, उसमें पूर्ण त्याग की भावना आ गई, वह व्यक्ति भी सतनाम सचखण्ड या अकाल पुरुष को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक उसको पूर्ण ज्ञान न मिले। गुरु नानक साहिब को सतनाम और सचखण्ड का ज्ञान कब हुआ ? यह उस समय हुआ, जब उन्होंने सच्चा सौदा किया था, साधुओं को मिले थे। सतगुरु तो गुरु नानक साहिब के अन्तर में प्रकट हुए थे, परन्तु बाहरी प्रभाव जिन्होंने उनके अन्तर में सद्गुरु को प्रकट किया उसका भी महत्त्व है।

भाग्य माता जी को भी सत्संगियों के प्रेम भरे पत्र प्राय: आते रहते हैं, जिनको पढ़कर वह अक्सर रो पड़ती हैं ऐसे ही एक पत्र का नमूना निम्न-लिखित है :—

लखनऊ
6-11-86

परम श्रद्धामयी मातेश्वरी

सादर चरण स्पर्श, राधास्वामी !

आपके सुन्दर कर-कमलों से लिखित बहुत ही प्यारा पत्र मिला, जिससे मेरी आस्था, श्रद्धा और विश्वास और भी प्रगाढ़ हो गया। इतनी निश्चल, पवित्र और सच्ची वाणी लिखने की शक्ति, सत्य को प्रकट करने की क्षमता आपमें विद्यमान है, जो इस ऐतिहासिक पत्र से प्रतीत हुआ। मेरा आपमें विश्वास प्रथम दर्शन से ही दृढ़ हो गया था जब आपने 1980 के वैसाखी के उत्सव पर एक बहुत ही प्यारा भजन सुनाया था। उसके बाद, जब मैंने आपके कमरे में पहुँच कर आपका अमेरिका का पता पूछा, तो आपने स्वयं अपने हाथों से मेरी डायरी पर लिखते हुए कहा था, "कृष्ण ! तुम मुझे पत्र ज़रूर लिखना।"

तभी से ही आप मेरे अन्तस् में, असीम श्रद्धा, ममता वात्सल्यमयी माँ के रूप में प्रतिष्ठित हैं। माँ बच्चों को असीम प्यार करती है। अपने तन, मन तथा धन को निःस्वार्थ भाव से अपनी सन्तति की रक्षा के लिए न्यौछावर कर देती है, यह मैंने पढ़ा और सुना था परन्तु इसका वास्तविक ज्ञान तो आपसे मिलने के बाद ही हुआ। आपके जगत् जननी, जगत्-माँ होने का इससे अधिक प्रमाण और क्या हो सकता है कि आपका हृदय कमल की भाँति कोमल है

आपकी करुणामय सरिता सदा प्रवाहित होती रहती है, प्रत्येक प्राणी के लिए, गाँव-2 में चाहे वह कन्नौज का गाँव हो राजस्थान का, पंजाब का या हिमाचल का। सभी को समान रूप से प्यार करना, पूर्णत्व की प्राप्ति की निशानी ही तो है। जब लखनऊ में मारवाड़ी गली से आप निकल रही थीं, तो मुझे ऐसा आभास हुआ कि मैं कहीं स्वामी रामतीर्थ के चोले का पुत्र तो नहीं ? उस चोले में मेरी माँ को अलग-थलग रहने में जो कष्ट सहने पड़े, अब इस चोले में समाप्त होकर दया, प्रेम, श्रद्धा तथा वात्सल्य में बदल कर, उस परमतत्त्व के अंग-संग रहकर, जगत् को अपनी लेखनी के माध्यम से बता रही हैं। सभी अवतार शक्ति के साथ आते हैं, आप तो साक्षात् भक्तिस्वरूपा हैं। आप में तथा पूज्य महाराज श्री में भक्ति-भगवान् का रिश्ता है और आप एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि इसमें किसीको सन्देह है तो यह उसकी बदकिस्मती है।

आपका यह दृष्टिकोण कि "महाराज श्री इज़ दो ग्रेटेस्ट सोल इन दा यूनिवर्स" शत-प्रतिशत सत्य है। मेरे आराध्यदेव परम पिता करुणानिधान ! सभी को अपने जैसा बनाना चाहते हैं। वह निरन्तर निर्बाधरूप से, अपनी स्वास्थ्य-सुविधा की परवाह किए बिना हम लोगों के कल्याण के लिए, हमारी आत्मा को उन्नत करने के लिए दिन-रात लगे रहते हैं। दुःखी जीवों की सहायता के लिए उनका द्वार सदैव खुला रहता है। उनकी कृपा भी नहीं अघाती, स्वाति की तरह प्यासी रहती है।

परम दयाल जी महाराज छोटे-2 गाँवों के अबोध-सरल तथा निष्कपट लोगों के बीच, बहुत ही प्रसन्न रहते थे, कहते थे,"तिवारी ! मैं गरीबों को प्यार करता हूँ तथा उनकी भावनाओं का आदर।" मेरे मानव दयाल जी महाराज भी

अपने पूज्य गुरुदेव की भाँति ग्रामीणों के बीच बहुत प्रसन्न रहते हैं। उनसे उनकी ही भाषा में बात करते हुए गाँव-गाँव की गलियों में आनन्द बिखेरते हुए, सभी को परम अर्थ, परम लक्ष्य की ओर अग्रसर करते हैं। उनकी आभा दर्शनीय होती है।

ऐसे अवसरों पर महाराज श्री की जो अवस्था तारी रहती है, वह ब्राह्मी स्थिति है, ऐसे दर्शन तथा उनके स्पर्श से परम आनन्द की प्राप्ति होती है। मन नहीं चाहता कि उनसे बिछुड़ें। मैं अक्सर उनका हाथ अपने हाथों में लिए रहता हूँ। इसमें मेरा स्वार्थ है मुझे परमानन्द की प्राप्ति होती है।

मेरी ममतामयी माँ ! आपका यह विचार भी बिलकुल सत्य है कि अधिकतर लोग अपने स्वार्थ के लिए परमात्मा तक को भी अपने जाल में फँसा लेते हैं, उन्हें समय-2 पर तंग करते हैं। वह यह नहीं समझते कि परमतत्त्व का शरीर रोम-2 तथा अंग-प्रत्यंग कितना सूक्ष्मुदर्शी होता है, जिसका हमें विशेष ध्यान रखना चाहिए। परन्तु वे तो अशुद्ध पात्र में अमृत भर कर रखना चाहते हैं, जबकि दूध, पानी तथा अन्य वस्तुओं को लोग शुद्ध पात्र में ही रखते हैं।

मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि वह कुछ इने-गिने लोगों को अपने जैसा बनाकर उनसे अपनी प्रेरणा से जगत्-कल्याण का काम कराने वाले हैं। ऐसा लगता है कि निकट भविष्य में समग्र विश्व को नई दिशा मिलने वाली है। विश्व का कल्याण महाराज श्री के दिव्य शरीर के माध्यम से ही होने वाला है। महाराज श्री के द्वारा एक दिन ऐसा चामत्कारिक विस्फोट होगा कि संसार आश्चर्यचकित हो जायेगा। परमतत्त्व के अवतार महाराज श्री, हमारे विकारों

को मिटाने के लिए आस्था-विश्वास को जगाने के लिए ही जगत्-जननी माता के साथ अवतरित हुए हैं। मेरी माँ! आपका वात्सल्य स्नेह सभी ही के लिए निर्बाध रूप से प्रवाहित हो रहा है। आप साक्षात् जगद्म्बा हैं, यह मेरा पक्का विश्वास है। एक न एक दिन उदयपुर के महन्त जी की भविष्यवाणी सत्य होगी। आपको लोग राजस्थान में आज से तीन साल पूर्व "शिव-पार्वती" कहते थे यों ही नहीं कहते थे, उस 'शिव-पार्वती" कहने में कितनी सच्चाई थी।

आशा जी का शत-प्रतिशत यही विश्वास है। अपने निजी मन्दिर के अन्दर उसने आपको भी प्रतिष्ठित कर रखा है। वह आपको जगत्-जननी जगदम्बा के रूप में पूजती हैं। आपका स्नेहिल वात्सल्यभरा वरद हस्त मेरे सिर पर है, इसलिये मुझे कोई फिक्र नहीं। आशा-विश्वास संजोये आपके चरणों में बारम्बार नमस्कार करते हुए तथा महाराज श्री के चरणों में नमस्कार करते हुए तथा पुनः आपसे पव लिखने का अनुरोध करते हुए आपका सब बालकों से अबोध बालक।

—कृष्ण मोहन

आख़िर लोग मानव को मानव क्यों नहीं समझते

लेखक
डा० प्रियदर्शी जेतली
एटलाण्टा, जार्जिया, अमेरिका।

15 बर्ष की आयु में जब मैं वर्जीनिया के एक स्कूल में दसवीं कक्षा में पढ़ रहा था मैं विश्वधर्मों का तुलनात्मक अध्ययन कर रहा था, उस समय मुझे यह चिन्ता सता रही थी कि सभी धर्म, मानवता को टुकड़े-2 करने तथा मानव-मानव में भेदभाव पैदा करने में क्यों तुले हुए हैं ? जब मैंने यह पढ़ा कि इस्लाम धर्म तलवार के ज़ोर से विश्वभर में फैलाया गया, तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैंने सोचा कि इस्लाम धर्म के संस्थापक हज़रत मोहम्मद ने प्रेम का प्रचार न करके हिंसा का प्रचार किया होगा। इस जिज्ञासा से प्रेरित होकर मैंने अपने पूज्य पापा से प्रश्न किया, "पापा ! क्या हज़रत मोहम्मद ने अपने अनुयायियों को दूसरे लोगों से नफ़रत करने तथा उनका संहार करने की शिक्षा दी थी ?"

पापा ने उत्तर दिया, "नहीं, नहीं, मेरे बेटे ! ऐसी बात नहीं है हज़रत मोहम्मद तो मानवभाव से प्रेम करते थे। वह तो अपने शत्रुओं से भी प्रेम करते थे। वह एक ईश्वर को मानते थे, इसलिये बहुत से लोग उनका विरोध भी करते थे। एक बूढ़ी महिला उनसे इतनी घृणा करती थी कि जब वह उसके घर के आगे से निकलते थे, वह उन पर कूड़ा फैंकती थी। चालीस दिन तक यह महिला हज़रत मोहम्मद पर लगातार कूड़ा डालती रही। परन्तु दया के

अवतार हज़रत मोहम्मद ने कभी भी उस बूढ़ी महिला पर क्रोध नहीं किया। उनको उस पर दया आती थी। इकतालीसवें दिन जब वह वहाँ से गुज़रे तो किसी ने उन पर कूड़ा नहीं डाला। वहाँ रुक गये और लोगों से पूछा, "आज हमारा स्वागत कूड़े से क्यों नहीं किया गया, वह बूढ़ी महिला कहाँ है?"

उन्हें जब यह पता चला कि वह महिला बीमार पड़ी है, वह उससे मिलने गये और कई दिन तक उसकी सेवा करते रहे। स्वस्थ होने पर, जब उस महिला को पता चला कि उसकी सेवा करने वाला व्यक्ति वही था, जिस पर कि वह प्रतिदिन कूड़ा डालती थी, उसके मन में मोहम्मद साहिब के प्रति प्रेम उमड़ा और वह उनकी शिष्या बन गई।

हज़रत मोहम्मत तो बहुत ही उदार थे उन्होंने इतना तक कहा कि जो व्यक्ति दूसरे धर्मों के संस्थापकों आ आदर नहीं करता वह मोमन नहीं है। एक मुसलमान दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ता है और उसे हर बार कहना पड़ता है, "खुदा ब्रह्माण्ड का मालिक है और परम दयाल है।" यदि हज़रत मोहम्मद तंगदिल होते तो वह यह कहते खुदा केवल मुसलमानों का ही मालिक है। इन बातों से तुम खुद ही समझ लो कि हज़रत मोहम्मद ने विश्वव्यापी प्रेम का कितना प्रचार किया होगा?"

बात मेरी समझ में आ गई। मैंने सभी धर्मों का गहराई से अध्ययन करके देखा और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जो आधारभूत नियम किसी भी धर्मसंस्थापक ने अपने अनुयायियों को दिए, उसके अनुयायियों ने, न ही केवल उन नियमों का उल्लंघन ही किया, बल्कि उसके बिलकुल विपरीत चले। हिन्दु धर्म के ऋषियों ने वेदों में कहा है, "सारा विश्व हमारा कुटुम्ब है।" परन्तु हिन्दु धर्म के

अनुयायी आज भी अपने ही धर्म के शूद्रों से घृणा करते हैं और उन्हें चाण्डाल कहते हैं। जैन धर्म के संस्थापक भगवान् महावीर ने कहा है कि जैनियों को अपरिग्रह अर्थात् सम्पत्ति को एकत्रित करने का लोभ नहीं होना चाहिए। आश्चर्य की बात है कि जैनी ही भारत में सबसे अधिक पैसा एकत्रित करने वाले हैं, सबसे अधिक अमीर हैं। ईसा मसीह शान्ति के दूत थे। उन्होंने कहा है, "तुम अपने शत्रुओं से भी प्रेम करो। यदि कोई तुम्हारी दाईं गाल पर थप्पड़ मारे तो अपनी बाईं गाल भी उसके सामने कर दो इत्यादि" किन्तु उसी ईसा मसीह के अनुयायियों ने क्या किया ? ईसा मसीह-शान्ति के अवतार के नाम पर अपने ही धर्म वालों का रक्तपात किया। अन्य धर्म के अनुयायियों का शोषण किया और धर्म के नाम पर भयंकर युद्ध किए। इन धर्मों के तथा उनके संस्थापकों के जीवन के विषय का अध्ययन करके, मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि यदि हम किसी भी धर्म के संस्थापक के सही विचारों और उनके बताये गये नियमों को जानना चाहते हैं, तो उनके अनुयायियों को देखिए, उनके व्यवहार को देखिए। यदि वे घृणा करते हैं तो समझ लीजिए कि उनके संस्थापक ने अवश्य ही प्रेम का सन्देश दिया होगा। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि हज़रत मोहम्मद के अनुयायी जो इस्लाम धर्म को तलवार के ज़ोर पर फैलाने वाले कहे जाते हैं, बहुत ही दयालु, उदार तथा हिंसा धर्म के विरोधी रहे होंगे।

मैं अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में भारत में ही रुहा। मेरा जन्म भारत में ही हुआ। मैं भारत को बहुत प्यार करता हूँ, भारत एक महान् देश है। परन्तु भारतीयों की कथनी और करनी में बहुत बड़ी खाई आ गई है। मैं

यहाँ आकर देखता हूँ कि लोग प्राय: एक-दूसरे की निन्दा करते हैं, झूठ बोलते हैं और अपने को दूसरों से श्रेष्ठ समझते हैं। भारतीयों में ऊँच-नीच की समस्या एक बहुत बड़ी समस्या है। यहाँ पर कम पोज़ीशन वाले लोगों या नौकरों से बात करते समय लोग उन्हें 'ऐ या अरे' कह कर सम्बोधित करते हैं और उन्हें ऐसा नीच समझते हैं जैसे कि वह मनुष्य ही नहीं। बड़ी पोज़ीशन या अफसरों के साथ बात करते समय उन्हीं रूखा बोलने वाले लोगों का बोलने का तरीका एकदम बदल जाता है, उनकी आवाज़ में मिठास आ जाती है। वे उन्हें 'ऐ या अरे' करके नहीं बुलाते बल्कि 'सर' कह कर बुलाते हैं। आखिर ऐसा क्यों होता है? लोग मानव को मानव क्यों नहीं समझते। उसे मेज़, कुर्सी, बेड या किसी भौतिक चीज़ की तरह प्रयोग क्यों करते हैं? एक मानव का दूसरे मानव को अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए प्रयोग करना क्या न्याय है? आपको किसने यह अधिकार दिया है कि आप अपने काम करवाने के लिए दूसरे व्यक्ति को नौकर बनायें? यह अन्याय है, पाप है, मानवता के नाम पर कलंक है इस अन्याय को सहन करना भी पाप है। आखिर लोग मानव को मानव क्यों नहीं समझते? उसे ईश्वर का अंश क्यों नहीं समझते

———

मेरी फकीर बाबा के प्रति श्रद्धांजलि

लेखक :
आचार्य विलियम रोडनहाईज़र
प्रोफेसर ऑफ़ फ़िलास्फ़ी, रिचमाण्ड यूनिवर्सिटी,
रिचमाण्ड वर्जीनिया यू० एस० ए०

जब मैंने पहिले-पहिल फकीर बाबा के दर्शन किए तो मेरी अन्तरात्मा ने कहा कि वह मेरे सम्पर्क में आने वालों में से सर्वश्रेष्ठ और उच्चतम आध्यात्मिक पुरुष हैं, मुझे ऐसा लगा कि मेरा पूरा मन तथा आत्मा उनके साक्षात्कार का अनुभव कर रहे हैं। मैंने खुले रूप से आनन्दपूर्वक फकीर बाबा के आध्यात्मिक प्रभाव को महसूस किया। जब उन्होंने एक क्षण के लिए मुझ पर दया की दृष्टि डाली तो ऐसा महसूस हुआ कि मेरी रग-रग में एक बिजली सी दौड़ गई। मुझे यह महसूस हुआ कि फकीर बाबा जान-बूझ कर मुझे वह शक्ति दे रहे हैं। मुझे पक्का विश्वास हो गया कि मुझे वह ऊँचा उठा रहे हैं।

मेरे मन ने यह महसूस किया कि जो कुछ उस समय घटित हो रहा था, वह अद्‌भुत था, जो मन के दायरे से बाहर था। मुझे यह पूरा विश्वास हो गया कि मुझे मालिक ने ही भारत में ला कर मानवता मन्दिर में इसलिये खड़ा कर दिया ताकि मैं फकीर बाबा के महान् व्यक्तित्व की परिधि के अन्दर आ जाऊँ। मेरे जीवन का महत्त्वपूर्ण आरम्भ उसी दिन से ही आरम्भ हो गया।

फकीर बाबा के साक्षात्कार से, मुझे युवावस्था से लेकर, उस समय तक के उच्चतम आध्यात्मिक अनुभवों की याद आ गई। मुझे ऐसे लगा कि उच्चतम आध्यात्मिक

अनुभव, ऊँचे पहाड़ों की उन चोटियों की भाँति हैं, जो हमारे साधारण नित्यप्रति की चेतना के बादलों से ऊपर उठी होती हैं। इस महान् सन्त की उपस्थिति में मुझे ऐसे लगा कि मैं एक ऐसे ऊँचे पर्वत पर पहुँच गया हूँ, जहाँ से मेरे जीवन की पिछली आध्यात्मिक ऊँचाइयाँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं।

इस समय, क्योंकि फकीर बाबा शारीरिक बन्धन से मुक्त हो कुके हैं, इसलिये उनका आशीर्वाद और भी प्रभावशाली हो गया है। उनका प्यार विस्तृत हो गया है। वह अब न ही केवल हमारी ही व्यक्तिगत समाधि में उपस्थित रहेंगे, बल्कि सभी अनुयायियों तथा आचार्यों में उनकी उपस्थिति का अनुभव होता रहेगा।

फकीर बाबा ने मुझे दो कार्य सौंपे थे। उनमें से पहिला कार्य है विभिन्न धर्मों के परस्पर एकत्व का कार्य और दूसरा है अमेरिका में सच्चे मानव धर्म तथा सच्चा जीवन व्यतीत करने की कला का प्रचार।

मुझे पूरा विश्वास है कि मैं यह दोनों कार्य एक ऐसी पुस्तक लिख कर पूरे कर सकता हूँ, जिसमें उन सब लोगों के अनुभव लिखे जायँ जिन पर कई वर्षों से फकीर बाबा का आध्यात्मिक प्रभाव पड़ा है। ये अनुभव विशेषकर पश्चिमीय लोगों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध होंगे। अतः मैं फकीर बाबा के सभी अनुयायियों से यह अनुरोध करता हूँ कि वे अपने ऐसे अनुभवों के विषय में लिखकर मुझे मानवता मन्दिर के पते पर भेज दें, जिससे आम लोगों को यह पता लगे कि फकीर बाबा ने अपने सत्संगियों के जीवन पर, उनके आध्यात्मिक विकास के लिए किस प्रकार प्रभाव डाला और साथ ही

साथ आध्यात्मिक विकास के साथ-2 उन्हें आर्थिक क्षेत्र में, स्वास्थ्य में और नित्यप्रति की समस्याओं में किस प्रकार सहायता मिली।

मेरा यह अगाध विश्वास है कि उन लोगों पर फकीर बाबा के आशीर्वाद की विशेष कृपा रहेगी, जो लोग उनके सम्बन्ध में अपनी जीवन-कथा व्याख्यापूर्वक लिखकर मुझे मानवता मन्दिर होशियारपुर के पते पर भेजेंगे।

परमसन्त पण्डित मानव दयाल जी महाराज की सेवा में शिव उपाध्याय की एक रचना

'भाव सुमन'

पण्डित जी के चरण कमल में, वन्दन करने आये।
डिगे नहीं विश्वास हमारा, भाव यही भर लाये॥
तन, मन, धन सब गुरु सेवा में, अर्पित करने वाले।
मानवता को राह दिखा कर, मनसा रहने वाले॥
नव जीवन विश्वास, दयामय दिया आपने प्यारा।
वन्दनीय, अभिनन्दनीय है, वचनामृत की धारा।
दया दान देकर कितनों को, अपने हृदय लगाया।
याद रहेगा सदा साधना, स्वर में जो भी गाया॥
लक्ष्य विश्व कल्याण आपका, सतत सनातनधर्मी।
जीवन की हर डगर सुहानी, करने वाले मर्मी॥
शकट हमारा भवसागर में, प्रभुवर पार लगाना।
मशिमी में सदा समाहित, एक रूप हम जाना॥

श्री यशपाल भाटिया जी को हजूर मानव दयाल जी महाराज का उत्तर

होशियारपुर,
13-11-86

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप परमप्रिय यशपाल :
राधास्वामी ; परम दयाल जी सहाई !

तुम्हारा 10 नवम्बर का पत्र मिला। तुमने उसमें जो सालवान स्कूल में दशहरा सत्संग के विषय में लिखा है, उसे पढ़कर मुझे इस बात की तसल्ली हुई कि तुमने हंस की तरह मोती चुन लिए। यदि सत्संगी में भूख हो और तपन करारी हो, तो उसे अवश्य ही सद्गुरु से लाभ होता है और वह सहज में ही सभी कर्मबन्धनों को काट कर जीवन्मुक्ति या विदेहमुक्ति को पा सकता है।

हालाँकि हरएक सत्संगी के अन्तर में परमतत्त्व मौजूद है और उसकी आत्मा, उस परमतत्त्व से मिलने के लिए निरन्तर तड़प रही है, फिर भी या तो पूर्वजन्मों के संस्कारों के कारण, या वर्तमान वातावरण के प्रभाव के कारण वह उस आत्मा की आवाज़ को सुन नहीं सकता, जो हर श्वास में उसे कह रही है, 'सोहम्', 'सोहम्' अर्थात् "मैं वह (परमतत्त्व) हूँ", "मैं वह हूँ"। हम एक मिनट में अठारह बार साँस लेते हैं। यदि तुम और कुछ भी न करो, केवल अपनी साँस को ही सुनो, तो तुम स्पष्टरूप से अनुभव करोगे कि साँस के भीतर लेना 'सो' है और उसका बाहर फेंकना "हं" है। इस प्रकार 'सोहम्' या 'सोहं' एक हालत है,

एक धुनात्मक शब्द है, जिसके सुमिरन से मनुष्य, भँवर-गुफा के उस नाके पर पहुँच जाता है, जिससे वह सतलोक में प्रवेश करता है।

सद्गुरु न तो जन्म लेता है और न ही वह मरता है, वह तो प्रकट होता है। जब उसकी जीवनयात्रा समाप्त होने लगती है, वह उस परमतत्त्वरूपी सद्गुरु तत्त्व को, एक अन्य जीवित व्यक्ति में प्रकट कर देता है। निनानवे प्रतिशत लोग तो परमतत्त्व के अवतार, परम दयाल जी महाराज जैसे परमयन्त को पहिचान ही नहीं पाये। इसलिये वे उनके सैकड़ों सत्संग सुनने के बाद भी सचेत दहीं हुए। यहाँ पर मुझे फिर कहना पड़ रहा है कि ऐसे सत्संगी ने अच्छे प्रारब्धकर्मों के अनुसार परम दयाल जी महाराज के साक्षात्कार करते हुए भी, न तो महाराल जी के जीते-जी उनके अवतार रूप को पहचाना और न ही उन्हें पूर्ण लद्गुरु स्वीकार करने का संकल्प ही किया।

प्यारे यश ! तुम्हारे अन्दर मालिक को मिलने की प्रबल इच्छा थी, इसलिये ही तुमने परम दयाल जी के इन शब्दों को याद रखा, "बच्चा ! जब लकड़ी जल जाती है तो आग और लकड़ी में कोई फर्क नहीं रहता।"

तुममें रूहानियत की पराकाष्ठा पर पहुँचने की प्रबल इच्छा थी। तुम्हारी आत्मारूपी लकड़ी को परम दयाल जी महाराज के शब्दों की चिनगारी लग चुकी थी, इसलिये ही तुमने मेरे लत्संग से ऐसी प्रेरणा प्राप्त की कि तुम्हें मेरे में परम दयाल जी महाराज के दर्शन हुए और साधना में माँ भण्डारो की आवाज़ सुनाई दी और साथ ही यह महसूस किया कि मैं वह सत्संग तुम्हारे ही लिए दे रहा था।

अगर सच पूछो तो मुझे यह याद ही नहीं कि मैंने दशहरे के सत्संगों में क्या कहा, हाँ इतना याद अवश्य हैं

कि मैं सत्संग देते समय, किसी अलौकिक धारा में बह गया था और कोई शक्ति मुझे अन्तस् से प्रेरित कर रही थी कि मैं उस धारा को बहाता चला जाऊँ और ऐसा लगता था कि मैं अपने आपको ही सत्संग दे रहा हूँ।

तुम्हारे इस श्रद्धामय तथा विश्वासपूर्ण भाव के पत्र को पढ़ने के बाद मुझे यह बात समझ में आ गई कि परम दयाल जी महाराज अपने सत्संगों में बार-२ यह क्यों कहा करते थे, "मैं अपने आपको ही सत्संग करा रहा हूँ।" हे मेरे प्रिय यशपाल ! तुमने यह पत्र लिख कर मुझे आभास करा दिया कि तुम मेरे सद्गुरु हो और मैं तुम्हें सद्गुरु के रूप में नमस्कार करता हूँ और सद्भावना देता हूँ। तुम्हें और तुम्हारे परिवार को दिली आशीर्वाद और राधास्वामी!

आपका फकीरमय मानव

शोक समाचार

मानव मन्दिर के पाठकों और सभी सत्संगियों को अत्यन्त दुःख से सूचित किया जा रहा है कि परमसन्त हजूर आनन्दराव उर्फ दयालानन्द जी महाराज अचानक 22 मार्च 1990 को चोला छोड़कर इस असार संसार से विदा होकर परमधाम प्रस्थान कर गये। समस्त विश्वव्यापी मानव परिवार की ओर से और विशेषकर परमसन्त पूर्णधनी परम मानव हजूर मानव दयाल जी की ओर से श्री आनन्दराव जी महाराज के परिवार को पूर्ण सहानुभूति के साथ सान्त्वना प्रस्तुत की जा रही है। मालिकेकुल से यही हार्दिक प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति दें और उनके परिवार के सदस्यों तथा सम्बन्धियों को इस दुःखद घटना को सहन करने की शक्ति दें।

एस. एल. सेठी
सेक्रेटरी

श्री यशपाल भाटिया (वाईस प्रैज़िडेण्ट इण्टरनैशनल सोसाइटी आफ़ ह्यूमैनिज़्म) का हज़ूर मानव दयाल जी महाराज के नाम पत्र

नई देहली,
10-11-86

सर्वाधार स्वामी :

राधास्वामी !

आपके पवित्र चरणकमल में सिर झुका कर प्रणाम !

सालवान स्कूल में जो तीन दिन का सत्संग-प्रोग्राम था, आपने तो उसमें साक्षात् परम दयाल जी महाराज के अपने रूप में दर्शन करा दिए। किसी भी प्रकार का कोई भी तो अन्तर नहीं था। साधना बहन के शब्द सुनकर तो ऐसे लगा कि साधना जी नहीं, बल्कि माँ भण्डारो ही की आवाज़ आ रही है। आपने अपनी दया की वही गंगा बहा दी जिसके विषय में हज़ूर परम दयाल जी महाराज फ़रमाते थे कि इस गंगा में चाहो तो मुँह धो लो, चाहे नहा लो या डुबकियाँ लगा लो।

एक बार जब मैं होशियारपुर मानवता मन्दिर में गया था, जब मैं परम दयाल जी के पास अकेला बैठा था तो वह बोले थे, "बच्चा ! जब लकड़ी जल जाती है, तो आग और लकड़ी में कोई फ़र्क नहीं रह जाता, अब मुझे अपने और मालिक में कोई फ़र्क नज़र नहीं आता।"

उन्हीं शब्दों को आपने मुझे चेताने के लिए अपने सत्संगों में दूसरे रूप में बताया। मेरे में परम दयाल जी

महाराज के चोला छोड़ने के बाद जो भ्रम या संशय थे आपने उन्हें दूर कर दिया। इसके लिए मैं सदा आपका आभारी रहूंगा।

जज साहिब ने इण्टरनैशनल सोसाइटी का वाईस प्रेज़िडैण्ट बना दिया। मेरी तो उनसे तथा आपसे यही प्रार्थना थी कि मुझे सेवादार ही रहने दें। आप तो मेरे ऊपर अपार दया करते रहते हैं। मैं तो बस यही जानता हूँ कि न मुझमें बल है न बुद्धि। आपने जो काम मुझसे लेना है, उसके लिए सच्चाई से काम करने की शक्ति आपने ही देनी है आपकी मौज ने ही देनी है।

आपकी तथा परम पूज्यनीय माता जी की सेहत कैसी है? आशा है कि 27 को आपके दर्शन का सौभाग्य अवश्य प्राप्त होगा।

आपका ही जीव
यशपाल भाटिया

दाता दयाल जी के अनमोल वचन

1. जब तक मन बुराइयों से साफ न होगा तब तक आध्यात्मिकता का असली लाभ भी हासिल न हो सकेगा। ये बुराइयाँ ईर्खा और दुश्मनी मन की बीमारियाँ हैं। पहिले मन के मकान को साफ करो फिर उसमें मालिक को बुलाने की कोशिश करो।
2. अगर खुश रहने का तरीका हाथ आ जाए तो क्या कहना है। मौत के समय भी खुशी तुम्हारे दिल से न जायेगी।

पूज्य भाई नन्दूसिंह जी महाराज के जन्मोत्सव पर फकीर की भेंट

यह भेंट केवल नन्दूभाई जी के ही लिए नहीं है वरन् समस्त महात्माओं के लिए है जो धार्मिक और आध्यात्मिक जगत् की भलाई के लिए कार्य करते हैं। और साथ ही वर्तमान सामाजिक और देशीय नेता जो देश में जनसाधारण की उन्नति देखना चाहते हैं।

पूज्य प्रिय नन्दू जी महाराज राधास्वामी !

प्रिय कमलेश्वर के पत्र से ज्ञात हुआ कि दक्षिण प्रान्त में आपका जन्मदिवस मनाया जा रहा है। इस शुभ अवसर पर आपके प्रेमी विभिन्न प्रकार के भावों को प्रकट करेंगे। मेरे हृदय में भी श्रद्धा उत्पन्न हुई क्या करूँ? अपने जीवन की कमाई या धन-सम्पत्ति जो प्राप्त की वह भेंट करता हूँ।

मुझे अपने जीवन में यदि कोई वस्तु सर्वप्रिय रही है तो उस मालिक, ज़ात, दाता दयाल, अकाल पुरुष अथवा परमतत्त्व का निज और वास्तविक स्वरूप था। अनुभव के अथवा खोज के पश्चात् यह निर्णय हुआ कि वह ज़ात मालिक जिसकी मैं खोज करता था मेरा अपना ही निज-स्वरूप या ज़ात थी :—

ज्ञान, अनुभव, गुरु परमात्मा ज़ात के सहारे रहते हैं।
ज़ात है आधार सबका सब उसी के अन्दर रहते हैं॥
वह न होती इनकी हस्ती का न होता नामो-निशाँ।
ज़ात ही में कौनोमकाँ अर्जोसमाँ रहते हैं॥
लामुहीत उसकी हस्ती है उसका नाम, रंग, रूप कुछ नहीं।
इससे ही सब संसार बनता है और इसी में लय होते हैं॥

मौज उठी आ गई इन्सानी चोले में धर बशक्ले इन्सान।
नामो रूप पर्दा है इन्सान ही है दर असल तत्त्व महान्।
हर बशर की ज़ात है वह कोई भी नहीं रहता है जुदा।
भरम अज्ञान वश लोग चिल्लाते हैं राम खुदा ॥

दूसरी वस्तु भक्ति है। इस भक्ति के भाव ने समस्त जीवन मुझ पर बोझ रखा। यह मेरे जीवन का आश्रय था। निर्बल के बल राम। मैंने राम भगवान् का उल्लेख रामायण, भागवत, भक्तमाल आदि पुस्तकों से बाल्यावस्था से सुना था। अन्त में इस राम, भगवान्, मालिक से मिलने की प्रबल इच्छा ने एक स्वप्न दिलाया जो मुझे दाता दयाल जी के चरणकमल में ले गया। प्रेम किया, आनन्द लिया, प्रसन्नता मिली, आश्रय मिला, उत्साह हुआ। परन्तु अन्तर में इस वास्तविक राम के मिलने की इच्छा जो सर्वाधार है, न गई। विवश होकर प्रेम का भाव प्रेम में खिचा, खिचा, खिचा, तन को त्यागा, मन को त्यागा, अपनी हस्ती खो गया।

खो के हस्ती अपने आप की सुध बुध भी खो गया।
जो रहा बाकी वह रहा अनाम, अरंग और अरूप।
वही है ऐ नन्दू प्यारे! राम सर्वाधार बाकी रह गया।

जीवन का अनुभव बताता है कि शरीर, मन के साथ रहते हुए यह असम्भव है कि मैं अपने सर्वाधार राम में सदैव ठहर सकूँ। क्या यह खेद नहीं कि जिस राम और मालिक को मैंने पाया उसमें शरीर और मन के साथ रहता हुआ, सदैव वहाँ नहीं रह सकता? यह क्रियात्मक जीवन है। इसलिये ऐ नन्दू, ऐ मेरे प्रियवर! मैं यह भक्ति भी अधूरी समझता हूँ और इस उम्र वाले ज्ञान और भक्ति को मंत्र समझकर, उसका विशेष मूल्य नहीं समझता। यह दोनों मेरे वहमी मन के सहारे थे। शान्ति और सौख्य प्राप्त करने

के यन्त्र थे। यह दोनों वस्तुएँ मेरे जीवन में अति प्रिय थीं।

किन्तु जब तक जीवन है एक वस्तु की सदा आवश्यकता प्रतीत होती है। वह पेट के लिए रोटी, शरीर ढकने के लिए मकान और ऐसी सामग्री या दशा जिससे जीवन खुशी से व्यतीत किया जाये।

ऐ मेरे प्यारे नन्दू भाई! सुनो बावला फकीर तुम्हें क्या कहता है? केवल ज्ञान तथा भक्ति इस जगत् में सुख नहीं दे सकती। इनसे मानसिक संशय, भ्रम, शंकाएँ जा सकती हैं, आत्मा आनन्द को प्राप्त कर सकती है, परन्तु मांसारिक जीवन सुच से व्यतीत करने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि मनुष्य पारस्परिक प्रेम, सहानुभूति तथा निष्काम सेवा करने के मार्ग को अपनाए तथा मानसिक ब्रह्मचर्य को बनाए रखे।

रहा नाम का जपना, सुमिरन, ध्यान और भजन यह भी मैं आपको भेंट करता हूँ। मैंने समस्त जीवन इस नाम के जपने में व्यतीत किया है वह आपको भेंट करता हूँ।

दाता दयाल जी के अनमोल वचन

1. अगर मन पवित्र नहीं है तो पूजा-पाठ, ज्ञान-ध्यान और कर्म-धर्म सबके सब बेकार और फ़ज़ूल हैं। सिर्फ दिल के साफ होने की देर है फिर सारी अच्छाइयाँ आप से आप उसमें आती जायेंगी।
2. हमेशा सच बोलो और सच बोलने की कोशिश करो परन्तु जिस सच्चाई से किसी का दिल दुखे, उससे परहेज़ करना ही ठीक है।

स्वर्गीय श्री दरवेश जालन्धरी की एक मार्मिक कविता
जो उन्होंने 1981 की वैसाखी के अवसर पर
हज़ूर श्री मानव दयाल जी के
शुभ आगमन पर बोली

तुम्हीं हो सही जानशीने फकीर ।
तुम्हीं पर था पूरा यकीने फकीर ॥
ऐ दरवेश मुरशिद बख्शीश से अपनी ।
अदा कर दी तुझको ज़मीने फकीर ।

तुम्हीं हो सही तरजमाने फकीर ।
असल सरवश कारवाने फकीर ॥
करो रहन भाई रहरखाने हक की ।
इसी से है दरवेश शाने फकीर ॥

तम्हीं वागन गुलस्ताने फकीर ।
तुम्हीं रौनके आसताने फकीर ॥
तुम्हीं हो अब दरवेश संगत के वाली ।
तुम्हीं दर असल हो निशाने फकीर ॥

तुम्हीं हो असल राज़दारे फकीर ।
तुम्हीं से है रौनक दुआरे फकीर ॥
तुम्हीं में है भरोसा दरवेश सब को ।
मुजस्सर तुम्हें इख्तियारे फकीर ॥

मुरशिदे कामिले ने अब तुमको भी कामिल कर दिया ।
बख्श कर शवाले अमल आलिम से आलिम कर दिया ।
आई० सी० शर्मा शुक्रिया करो उसी दरवेश का ।
जिसके अव्वल में वह खुद है उसमें शामिल कर दिया ।

अमेरिका की आचार्या श्रीमती थैल्मा कार्टर की मृत्युशय्या पर पड़ी स्वर्गीय माता जी के अन्तिम शब्द

इस बार जब भाग्य माता जी का आपरेशन हुआ तो आपरेणन के लिए हस्पताल में हमें थैल्मा ही ले गईं और पूरा समय वह मेरे साथ रहीं। आपरेशन के बाद उन्होंने भाग्य माता जी की खूब सेवा की, थैल्मा की पूज्य माता जी उन दिनों हस्पताल में थीं उनको पेट का कैन्सर था। थैल्मा अपनी माता की देख-रेख भी करती थीं भाग्य माता जी व मेरी भी। उनको इस बात का अफसोस था कि वह इस बार माँ की बीमारी के कारण, हमारी सेवा पूरे जोश के साथ नहीं कर सकीं। वह जब कभी भी दो-चार दिन के लिए माँ के पास जातीं उस अवधि में हमारे मानवता मन्दिर के श्रद्धालु सत्संगी दत्ता की सुपुत्री जो अमेरिका में वाशिंगटन में बसी हुई हैं वह और उनके पति सुरेन्द्र शर्मा अपने घर ले जाकर हमारी सेवा करते थे। बड़े प्यारे हैं दोनों पति-पत्नी।

थैल्मा की माता जी का जब स्वर्गवास हो गया तो उन्होंने हमें हमारे लड़के प्रियदर्शी के घर फोन किया, "पिता जी ! मेरी माता का स्वर्गवास हो गया है अब मैं आपकी सेवा निश्चिन्त होकर कर सकूंगी।" उन्होंने यह भी कहा, "मेरी माँ को काफी दिन तक बहुत ही दर्द रहा, परन्तु मृत्यु के समय वह बहुत शान्त थीं। उनके आखिरी शब्द थे 'देखो बच्चो ! मुझे तैयार कर दो मेरे सिर पर हैट लगाओ मेरी कंघी करो मुझे इत्र लगाओ, तुम्हारे डैडी मुझे लेने आ गये हैं मैं उनके साथ चली जाऊंगी।' ये शब्त उनके अन्तिम शब्द थे । 15 मिनट बाद उन्होंने प्राण त्याग दिये।"

ऐसी महान् माँ की बेटी हैं हमारी आचार्या थैल्मा कार्टर।

मानव दयाल

1990 का वैसाखी - सन्देश

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,

परम प्रिय सत्संगियो :

राधास्वामी परम दयाल जी सहाई ।

हर वर्ष की भाँति हम इस वर्ष भी वैसाखी के महान् उत्सव को मनाने जा रहे हैं। यह पर्व केवल सन्तमत के लिए नहीं, बल्कि मानवमात्र के लिए विशेष महत्त्व रखता है। जैसा कि मैंने कई बार आपको बताया है, वैसाखी शब्द का अर्थ बहुत गहरा है। यह शब्द संस्कृत के दो अन्य शब्दों से बना है वै+साक्षी। वै का अर्थ आकाश अर्थात् अनन्त देश, अनन्त प्रसार वाला जगत् और साक्षी का अर्थ वह परमतत्त्व है, जो इस जगत् से परे, सर्वाधार अपने आप में पूर्ण तत्त्व है। उसे 'साक्षी' इसलिये कहा जाता है कि वह इस जगत् का आधार होते हुए भी जगत् से परे है। जगत् के परिवर्तन से, उसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय से अछूता रहता हुआ, उसका साक्षी है। इसीको चौथा पद कहा जाता है। यही ओंकार का वह बिन्दु है, जिससे जगत् पैदा होता है और जिसमें वह अन्त में विलीन हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य का शरीर उसका मन और उसकी आत्मा जगत् है, और उसकी विशुद्ध आत्मा जाते पाक (जिसे सन्तों ने सुरत कहा है) अपने आप में इन तीनों को अनुप्राणित करता हुआ भी शुद्ध-बुद्ध, अमल-निर्मल, परमसुखराशि स्वरूप साक्षी है।

राधास्वामी मत या मानवता धर्म सनातन धर्म एवं अनादि—अनन्त धर्म के विकास की आखिरी सीढ़ी है। इस व्यापक धर्म का उद्देश्य मनुष्य में उसके साक्षीभाव को जगा देना है एवं चेता देना है। सन्त अवतार का मकसद ही यही होता है कि वह दुःखी जीव को त्रिगुणात्मक जगत्-रूपी भवसागर से पार ले जाता है। यह चेतावनी जीव में कोई नई वस्तु पैदा नहीं कर देती। जीव अपने आप में पूर्ण है। उसके अन्दर साक्षी मौजूद है किन्तु वह अज्ञान के कारण और मोह के कारण अपनी इस पूर्णता को भूल गया है। वह अपने आप में अहंकाररूपी आत्मा को ही अपना आपा समझ रहा है।

पन्द्रह व्यक्ति वैसाखी के दिन नदी पर स्नान करने के लिए गये। वहाँ मेला लगा हुआ था। वे 15 व्यक्ति नहाने के बाद भीड़भाड़ से गूज़रते हुत उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ उन्हें सवारी लेनी थी। उनमें से एक व्यक्ति ने कहा मुझे यह देख लेने दो कि हम 15 व्यक्तियों में से कोई भीड़भाड़ में गुम तो नहीं हो गया। उसने सबको एक कतार में खड़ा करके गिनना शुरू किया। पर वह अपने आपको गिनना भूल गया और कहने लगा, "हम पन्द्रह व्यक्ति आये थे लेकिन चौदह ही रह गये।" इसी प्रकार सभी व्यक्तियों ने बारी-२ से गिनती की और सभीने वही ग़लती दुहराते हुए कहा कि उनका एक व्यक्ति कम है। एक समझदार आदमी वहाँ खड़ा हुआ सब कुछ देख रहा था। उसने कहा, "ठहरो! मैं तुम्हें गिनती कराता हूँ। उसने सबको एक पंक्ति में खड़ा करके पूरी गिनती करा दी और इस तरह हर व्यक्ति को चेता दिया कि वह अपने आपको भूल गया था। ये 15 व्यक्ति हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा चित्त, मन, बुद्धि और अहंकार हैं। पन्द्रहवाँ हमारा अपना

ही आपा है। किन्तु इस आपे को हम भूल गये हैं। वह सोलहवाँ आदमी सद्गुरु सन्त है, जो हमें चेता कर हमारे निजरूप को जगा देता है। यही सन्त का काम है। यही सनातन धर्म, सन्तमत यही राधास्वामी मत एवं युग-धर्म मानवता का लक्ष्य है। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही परम दयाल जी महाराज ने मानवता मन्दिर में वैसाखी के अवसर पर सत्संगों का सिलसिला जारी किया था। आज का वैसाखी का पर्व हम उसी परमतत्त्व आधार परमसन्त अवतार परम दयाल जी महाराज के चोला छोड़ने के नौ वर्ष बाद मना रहे हैं। किन्तु इस समय विश्वभर में मानव हर जगह दुःखी हो रहा है।

परमतत्त्व के अवतार परम दयाल जी महाराज सदैव यही कहा करते थे कि, "मानवता धर्म विश्वभर में फैलेगा। फैलेगा ! फैलेगा ! " मानवता धर्म के सिवा ऐसा कोई भी धर्म इस समय नहीं है जो विश्व में शान्ति स्थापित कर सके।

मानवता धर्म किसी विशेष सम्प्रदाय, सामाजिक संस्था या किसी विशेष महापुरुष द्वारा प्रतिपादित किसी विशेष दर्शन व दृष्टिकोण पर आधारित धर्म का नाम नहीं है, बल्कि यह मनुष्य की पूर्णता पर आधारित उस सत्य का नाम है, जिसकी खोज में मनुष्य युगों से प्रयत्नशील रहा है।

समय परिवर्तनशील है। समय के साथ-२ दुनिया की हर चीज़ बदलती है। समय के बदलने के साथ-२ एक ही सत्य के अर्थ भी बदल दिये गये, और 'धर्म शब्द' को ठीक तरह से न समझने के कारण दुनिया में बड़ी भ्रान्तियाँ और ग़लतफहमियाँ फैली हुई हैं, जिनके कारण दुनिया में कितने ही युद्ध हुए हैं। इस युग में हर जगह, हर देश और हर महाद्वीप में अशान्ति, आतंकवाद और हिंसा का साम्राज्य

छाया हुआ है। कहीं धर्म के नाम पर, तो कहीं रंग-भेद के आधार पर लड़ाइयाँ हो रही हैं।

मध्य एशिया में धर्म के नाम पर यहूदियों, ईसाइयों तथा मुसलमानों में एक लम्बे अर्से से लगातार मार-काट और युद्ध हो रहे हैं। आयरलैण्ड में शान्ति के दूत ईसा मसीह के नाम पर, कैथोलिक और प्रोटैस्टैण्ट दोनों ईसाई होते हुए भी दिन-रात एक दूसरे का गला काटने में लगे हुए हैं। दक्षिणी अफरीका में अल्पसंख्यक गोरी जाति बहुमत वाली काली जनता पर लगातार अत्याचार करती जा रही है, संहार करती जा रही है। ऋषियों की भूमि भारत को ही देख लो कितने अत्याचार हो रहे हैं यहाँ कितदा परस्पर मत भेद है प्रतिदिन! प्रश्न उठता है इस मार-काट का कारण क्या धर्म है?

इसका उत्तर है नहीं। मानव समाज की दुर्दशा का कारण धर्म स्वयं नहीं है, हाँ धर्म के ठेकेदार ज़रूर हैं। अधिकतर लोग अपने-२ धर्मग्रन्थों को पढ़ते हैं या धर्म के विषय में इन ठेकेदारों से सुनते हैं, जिन्हें स्वयं भी मालूम नहीं कि धर्म है क्या? मानवता का मतलब क्या है? आम तौर पर धर्म को एक फ़िरका या संस्था माना जाता है। इसी ही दृष्टि से हिन्दु धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म, यहूदी धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, पारसी धर्म तथा सिक्ख धर्म आदि को धर्म का नाम दिया जाता है। परन्तु धर्म की इस प्रकार की फिरकेपरस्ती की परिभाषा बहुत ही संकीर्ण है। उसमें कट्टरवादिता है, जो मानवमात्र के लिए बहुत हानिकारक है।

मनुष्य को सच्चे 'मानवता धर्म' को समझने के बाद ही असली धर्म की समझ आती है। मानवता धर्म को अपनाने के बाद ही मनुष्य झूठे धार्मिक झगड़ों से बच सकता है।

ज़रा सोचिए कि जितने भी धर्म, दर्शन और विज्ञान हैं, आखिर किसके लिए हैं? मानव के लिए ही तो हैं, जिन्हें मानव ने ही मानव के लिए निर्धारित किया हैं। आज तक मनुष्य के अतिरिक्त क्या किसी अन्य प्राणी ने बिज्ञान, धर्म, राजनीति या समाजनीति आदि की स्थापना की है? सभी विज्ञान, सभी धर्म, सभी राजनैतिक संस्थाएँ, मानवीय संस्थाएँ ही तो हैं। और सभी धर्म वास्तव में मानव धर्म ही हैं।

यदि ग़ौर से देखा जाये नो दुनिया के सभी धर्मों में मानवता को किसी न किसी रूप में श्रेष्ठ माना गया है। कोई भी धर्म यह नहीं कहता कि आपस में वैर रखो। सभी धर्म ईश्वर के एक होने तथा उसके हर जगह हाज़िर-नाज़िर होने में विश्वास रखते हैं। अलग-अलग धर्मों के चलाने वाले अवतारों और पैगम्बरों ने यही कहा है कि ईश्वर अनन्त है, और उसकी शक्ति के बाहरी रूप को ईश्वर के बराबर नहीं मानना चाहिए। लेकिन अफ़सोस इस बात का है कि हरएक धर्म के अनुयायियों ने इस जगत् को ही अनन्त ईश्वर मानकर बड़ी भूल की। निन्दा करते हैं। मानवता धर्म किसी भी धर्म की निन्दा नहीं करता और एक सच्चा मानव दूसरे मानव की शारीरिक, मानसिक और भौतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी, उनके पीछे एकत्व को देखता है। वह सभी द्वन्द्वों से बचकर, ऐसा समन्वयात्मक जीवन व्यतीत कर सकता है, जिसमें उसका लोक और परलोक दोनों बन सकते हैं। असल में, धार्मिक बनने का मतलब है मनुष्य बनना! मनुष्य अपने आप में पूर्ण है और उस पूर्णता को प्राप्त करने का पहिला क़दम है सच्चा मानव बनना।

मेरे परम गुरु परम दयाल जी महाराज ऐसे सम्प्रदायों का ज़बरदस्त विरोध करते थे, जो किसी एक खास व्यक्ति

पर केन्द्रित हों। वह मानवमात्र को धर्म के नाम पर टुकड़े-२ होने से बचाना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी संस्था का नाम किसी खास व्यक्ति या धर्म पर न रखकर "मानवता मन्दिर" ही रखा। मानवता धर्म में किसी प्रकार के रीति-रिवाज, धर्म, जाति, मत या राष्ट्र पर आधारित, किसी भी प्रकार का पक्षपाती दृष्टिकोण मौजूद नहीं है। सभी धर्मों का साथ-२ पनपना मानवता को, धर्म के नाम पर लड़ने-झगड़ने तथा मारने-काटने से बचा सकता है।

मनुष्य ईश्वर का अंश होने के कारण, स्वभाव से बुरा नहीं, अच्छा ही है। उसमें दुःख, ईर्ष्या, लोभ, मोह, क्रोध तथा अहंकार आदि अवगुण उसके अज्ञान ही के कारण आ गये हैं। वास्तव में तो मनुष्य ईश्वर का साक्षात् रूप है। बाईबल में लिखा है "Man is the image of God" अर्थात् "मानव ईश्वर का रूप है"। मानव पाक है, पवित्र है, पूर्ण है और उसी मानव का मानवता धर्म पाक है, पवित्र है तथा सब धर्मों से श्रेष्ठ है। कोई भी धर्म, चाहे वह किसी भी दृष्टि से मालिक क्यों न माना जाता हो, जो 'मानवता' को नहीं मानता, जो भगवान् को मानव के अन्दर नहीं देखता, वह धर्म नहीं एक अभिशाप है।

आज जगत् में विज्ञान की तरक्की क्यों हो रही है और धर्म पिछड़ता क्यों चला जा रहा है? इसका कारण यह है कि भिन्न-२ देशों, भिन्न-२ महाद्वीपों के लोग, बिना किसी भेद-भाव के अपने परीक्षण करके उनकी तुलना दूसरे वैज्ञानिकों के प्रयोगों से करते रहते हैं। किन्तु धर्म के भिन्न-२ ठेकेदार केवल अपने ही धर्म को सर्वश्रेष्ठ समझकर दूसरे धर्मों की निन्दा करते हैं, उनका मज़ाक उड़ाते हैं। अपने धर्म की तुलना दूसरे धर्मों से करना तो दूर रहा, वे दूसरे धर्मों के

विषय में जानना भी अपना अपमान समझते हैं। किसी विशेष धर्म में पैदा होना पाप नहीं है, परन्तु दूसरे अपने धर्म के दायरे में, मर जाना मूर्खता है। दूसरे धर्मों के विषय में न जानना तथा उसकी तुलना अपने धर्म से न करना बहुत बड़ी संकीर्णता है। इसी संकीर्णता के कारण ही आज धर्म पिछड़ता चला जा रहा है, पतन की ओर जा रहा है।

धर्म के नाम पर चमत्कारी घटनाओं ने भी मानव-जाति पर बहुत ही अत्याचार किये हैं। यदि सच्चे मानवता धर्म को आज भी अपनाया जाये, तो मानव जाति के बटवारे, धार्मिक युद्धों, धर्म के नाम पर हत्याओं और ईश्वर के नाम पर मनुष्यों को ज़िन्दा जला देने इत्यादि के भयंकर रोगों से बचाया जा सकता है। 1947 में ऋषियों की भूमि कहलाने वाले भारत में धर्म के नाम पर देश का बटवारा हो गया। हिन्दु तथा मुसलमान दोनों ने अपने-२ धर्म की दुहाई देकर लाखों व्यक्तियों को ज़िन्दा जला दिया, मासूम बच्चों, असहाय महिलाओं और वृद्ध लोगों का खून करके अपनी बेरहमी, बेशर्मी तथा जंगलीपन का सबूत दिया।

आम लोग धर्म को चमत्कारों तथा सिद्धियों से सम्बन्धित करते हैं और उनसे प्रभावित होकर साधुओं और गुरुओं के पीछे इसलिये भागते फिरते हैं कि उनकी सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति होती रहे। वे गुरु को जादूगर समझते हैं। पानी पर चलना, दो-चार रोटियों से हज़ारों लोगों की भूख मिटाना और ईश्वर के नाम की दुहाई देकर रोगियों की बीमारियों को दूर करना ऐसी अजीबो-गरीब घटनाएँ या चमत्कार नहीं हैं, जिन्हें ईश्वर की ताकत का प्रदर्शन कहा जाय। ऐसी-२ घटनाएँ मनुष्य के अपने ही मन की ताकत के कारण घटित होती हैं, क्योंकि मनुष्य का मन विश्वव्यापी सूक्ष्म मन से जुड़ा हुआ है। वह ब्रह्माण्ड के मन

का छोटा नमूना है। उसमें चमत्कारी घटनाओं को पैदा करने की शक्ति है। यह शक्ति हरएक मनुष्य के अन्दर है, किन्तु अज्ञान के कारण वह उसे जान नहीं सकता। अपनी पूर्णता में अविश्वास करके सदा किसी बाहरी चीज़ का ही सहारा ढूँढ़ता है। वह ईश्वर के किसी खास रूप को ईश्वर मान लेता है और तरह-२ के चमत्कारों घटनाओं के घटने का कारण उसी ही रूप को मानता है। वह इतना कट्टर हो जाता है कि दूसरे धर्मों या सम्प्रदायों से घृणा करने लगता है। वह ईश्वर के सच्चे रूप को भूल कर, केवल उसके रूप पर आश्रित होकर भटकता रहता है। दाता दयाल जी के शब्दों में :—

"फकीरा गुरु तो तेरे पास,
तेरे मन में, तेरे तन में, तेरे स्वासों स्वास।
गुरु नहीं काशी, गुरु नहीं मथुरा, गुरु नहीं कैलाश।
ढूँढ़ उसे अपने मन में, वहाँ है गुरु का बास।"

भिन्न-२ धर्मों के अनुयायियों ने अपने-२ धर्मगुरुओं के असली रूप को न पहिचान कर अज्ञान के कारण, उनको अलग-२ ईश्वर मान लिया है। यह बात केवल भारत में ही नहीं पश्चिम के सभी महाद्वीपों पर लागू होती है, जिससे भोले-भाले लोग कई ईश्वरों को मानते हैं। एक दिन मेरे छोटे लड़के प्रियदर्शी से, जब वह पहिले-पहिल दस साल की आयु में अमेरिका गया था और लिन्चबर्ग वर्जीनिया के एक प्राईमरी स्कूल में पाँचवीं कक्षा में दाखल हुआ था, एक सहपाठी ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है? दर्शी ने उत्तर दिया, "प्रियदर्शी जेतली", फिर उसने पूछा, "तुम्हारा धर्म क्या है?" दर्शी ने उत्तर दिया, "हिन्दु धर्म।" इस पर वह दसवर्षीय भोला-भाला अति प्यारा लड़का बोला "मैंने तो कभी इस denomination का नाम यानि कि इस सम्प्रदाय

का नाम नहीं सुना" वह लड़का ईसाई था। उसे शायद यह शिक्षा दी गई थी कि ईसाई मत ही दुनिया का एकमात्र धर्म है और ईसाई मत के कई फ़िरके हैं जैसे कैथोलिक, प्रैस्पटीरियन बैपटिस्ट, लूथरन, मैथोडिस्ट इत्यादि। उस बेचारे लड़के ने हिन्दु फ़िरके के बारे में कभी नहीं सुना था। वह समझ रहा था कि हिन्दु भी ईसाई धर्म का एक फ़िरका होगा जिसके विषय में उसने नहीं सुना।

फिर उस लड़के ने पूछा, "अच्छा दर्शी! यह बताओ तुम्हारा परमात्मा कौन है?"

दर्शी हैरान हो गया उसे तो यह संस्कार दिये गये थे कि परमात्मा एक है। वह बोला, "डेविड! क्या परमात्मा अनेक हैं? मैं तो समझता हूँ कि मेरा परमात्मा भी वही है, जो तुम्हारा है।" कितनी बड़ी अज्ञानता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आम लोगों के लिए अन्ध-विश्वास, चमत्कार, रूढ़िवाद और कर्मकाण्ड आदि के चक्कर से निकलना बहुत ही कठिन होता है। मनुष्य का मन हमेशा अपनी इच्छा या विचारों का तानाबाना बुनकर उसी नमूने के मुताबिक ही अपनी ज़िन्दगी चलाता है।

मेरे पास बहुत से सत्संगी आकर कहते हैं, "बाबा! मुझे पुव दे दो, बाबा धन-सम्पत्ति दे दो, बाबा मुझे बीमारियों से मुक्त कर दो।" मैं उन्हें सदा सद्भावना के साथ आशीर्वाद देता हूँ। उनके यदि काम बन जाते हैं तो यह सब उनके ही मन की शक्ति तथा विश्वास के कारण ही होता है। यदि किसी का काम तत्काल नहीं बनता, तो उसे धैर्य से काम लेना चाहिए। उनके काम न बनने का कारण उनका अपना ही अविश्वास होता है या फिर कर्म के भोगों के अनुसार उनके काम होने का समय नहीं आया होता या उनका मन

पवित्र नहीं होता। ऐ मेरे प्यारो ! नैतिकता पर चलने वाले संसारी लोग और रूहानियत में तरक्की की इच्छा रखने वाले सत्संगी, दोनों के लिए मन की पवित्रता का होना बहुत ही जरूरी है। कोई भी सन्त, परमसन्त, महात्मा या गुरु, जो अपने अनुयायियों की रूहानी तरक्की चाहता है, उसे चाहिए कि वह सबसे पहिले अपने मन को साफ करे ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, अहंकार के दोषों से बचे, तभी ही वह सच्चा मानव बनेगा और उसके अनुयायी भी सच्चे मानव बनेंगे और सच्चा मानव ही सर्वश्रेष्ठ है। जगत् में मनुष्य से श्रेष्ठतर कोई भी वस्तु नहीं है।

सद्गुरु महर्षि शिवव्रत लाल जी वर्मन, जो सन्तमत के व्यास हुए हैं, हर स्थान पर इस तथ्य पर जोर देते हैं कि केवल मानव ही पूर्णता प्राप्त करने तथा परमधाम तक पहुँचने का अधिकारी है। सुरत का मनुष्ययोनि में पैदा होना अभिशाप नहीं, बल्कि उसका परम सौभाग्य है। उनके शब्दों में :—

'नर देही भवसागर तरनी, दया से हाथ में आई।
जो कोई इसका सार न जाने, बिरथा जनम गंवाई॥

हे मेरे प्यारे सत्संगियो ! मेरे आचार्यो ! मैं चाहता हूँ कि आप सबसे पहिले सच्चे मानव बनो। मुझे इस बात को कहने में बहुत ही खुशी होती है कि हमारे आचार्य उच्च कोटि के विद्वान् होने के साथ-२ सच्चे मानव हैं और मेरे प्यारे सत्संगी तो मेरे गुरु हैं ही। उनकी श्रद्धा तथा निष्ठा का पारावार नहीं। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम तथा विदेशों के सत्सगी कितने महान् हैं मैं उनकी एक-दूसरे से तुलना नहीं कर सकता। राजनीति में भारत में उत्तर तथा दक्षिण में अक्सर मतभेद रहता है। परन्तु मेरे तो दक्षिणवासी

सत्संगी उत्तरी भारतीय सत्संगियों से श्रेष्ठ हैं और उत्तरी सत्संगी दक्षिण के सत्संगियों से श्रेष्ठ हैं। उनकी तुलना नहीं की जा सकती। यदि मानवता धर्म में रहने का दावा करते हुए भी कोई आचार्य, सन्त या सत्संगी राजनीति की भाँति उत्तरी और दक्षिणी सत्संगियों में दरार डालने की कोशिश करे, तो यह महापाप होगा। अपना मानवता धर्म तो विश्व-भर में फैल रहा है। हम क्या इतने तंगदिल हैं कि छोटे से भारत के अन्दर भी उत्तर तथा दक्षिण, ब्राह्मण तथा कायस्थ के संकीर्ण दायरे में फँस रहें। हमारा परिवार तो विश्वभर में फैला हुआ है—विश्वभर में। इस बात पर ग़ौर करो मेरे प्यारो! संकीर्णता को छोड़ो अपने मन की शक्ति को पहिचानो! आप दाता दयाल जी महाराज, परम दयाल जी महाराज तथा मेरी सन्तान हैं अपने को पहिचानो मेरे प्यारो पहिचानो! देखो आपके मन की शक्ति का पारावार नहीं। दो नवयुवकों ने मिलकर हैदराबाद में मानवता मन्दिर की ढाई हज़ार गज़ ज़मीन खरीद ली और पिछले वसन्त-दोरे पर एक ही दिन में मानवता मन्दिर के भवन के लिए दो लाख रुपया एकत्रित कर लिया। क्यों कर लिया कैसे कर लिया? अपनी मन की शक्ति को पहिचानने के कारण तथा गुरु में अगाध श्रद्धा के कारण ही किया।

राधास्वामी धाम में महर्षि शिवव्रत लाल जी के चोला छोड़ने के बाद 51 वर्ष के बाद फिर से बहार आई। दूर-२ से भारत के कोने-२ से तथा अमेरिका से भी एक सत्संगी आए। क्यों आए? सत्संगियों के मन की शक्ति के प्रभाव के कारण आए महर्षि दाता दयाल जी की रेडिएशन अभी तक भी गोपीगंज के राधास्वामी धाम में मौजूद हैं। वहाँ से हटने की इच्छा ही नहीं होती। इस बार हनमकुण्डा तथा

राधास्वामी धाम में आए हुए सत्संगियों की संख्या बहुत ही अधिक थी उनका उत्साह देखने योग्य था। वास्तव में ये सभी केन्द्र सत्संगों के द्वारा मानवता की पूर्णता को जगाने के लिये ही बनाये गए हैं। शरीर, मद और आत्मा के दर्जों का स्वामी, अविनाशी साक्षी है। ओम् शब्द बिन्दु के साथ पूर्ण है। मनुष्य शरीर (अ), मन (उ) तथा आत्मा (म) का आधार इन तीनों से परे, विशुद्ध आत्मा एवं सुरत है।

ओम् शब्द में भी चौथे पद की झलक है। जगत् के अन्दर परम पुरुष अ, ब्रह्मा या विराट् है। उ, निर्गुण या अव्याकृत सूक्ष्म शरीर ब्रह्माण्डी मन है। म, शिव एवं जगत् की आत्मा हिरण्यगर्भ है और बिन्दु इन सबका आधार चौथा पद है। मनुष्य में शरीर विराट् है, मन विष्णु है या अव्याकृत है। आत्मा शिव एवं हिरण्यगर्भ है और सुरत परमतत्त्व का अविनाशी अंश है। यहाँ पर धर्म का अर्थ आधार एवं सर्वाधार है। इस जगत् में सर्वाधार परमतत्त्व एक व्यवस्थित रूप से मौजूद है। उसकी इसी व्यवस्था को विश्वधर्म कहा जाता है।

जैसे यह जगत् अनुशासन के नियम पर चल रहा है, उसी तरह मनुष्य को अपने जीवन को भी अनुशासन में ही चलाना चाहिए। नक्षत्र, चाँद, सितारे, सूर्य और आकाश-गंगा उसी सर्वाधार परमतत्त्व के अनुशासन में एक समरूपता से चल रहे हैं। मनुष्य को भी अपने जीवन को समरूप बनाना चाहिए। सारा जगत् कर्म के सिद्धान्त पर आधारित है इसलिये मनुष्य भी कर्म के सिद्धान्त पर आधारित है। जगत् की सभी शक्तियाँ, देवी-देवता आदि, अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए अन्त में परमतत्त्व आधार को प्राप्त कर लेते हैं। दूसरे शब्दों में, देवी-देवताओं का निरन्तर

समरूपता से अपने कर्त्तव्य को निभाना ही परमतत्त्व के शरणागत होना है। इसलिये मनुष्य का परमधर्म यही है कि वह उसी सर्वाधार में जहाँ से वह आया है, पुनः विलीन हो जाने के लिए उसकी शरणागत हो जाये। इसलिये सभी धर्म किसी न किसी रूप में शरणागत होने का प्रयास करते हैं। हरएक धर्म में ईश्वर के प्रति प्रेम और मनुष्य के प्रति प्रेम का विधान है। हरएक मुख्य धर्म मनुष्य को ईश्वर का रूप मानता है और उसे पुनः ईश्वर से मिला देने का उपचार करता है। वास्तव में धर्म का अर्थ व्यक्ति का प्रेममय होकर ईश्वर में मिल जाने का अनुभव ही है।

इस दृष्टि से सभी धर्म, परस्पर रीति-रिवाज में और रूढ़िवाद में, भिन्न होते हुए भी मूलतया एक हैं। हरएक धर्म के संस्थापक एवं अवतार ने अपने अनुभव के आधार पर इसी सच्चाई पर चलकर अपने अनुयायियों को प्रेम के मार्ग पर चलाकर इस व्यापक धर्म की स्थापना की है। किन्तु हर धर्म के अनुयायियों ने इस प्रेम के मार्ग पर न चलकर रीति-रिवाजों और रूढ़िवाद में फँसकर धर्म को प्रेम के स्थान पर नफ़रत और समरूपता के स्थान पर संघर्ष का विषय बना दिया है।

इसी प्रकार ईश्वर के सम्बन्ध में भी उसके असली स्वरूप को ठुकरा कर अपने ही धर्म के संस्थापक को या अपने इष्ट को एकमात्र व्यक्तिगत और सीमित दृष्टि से परमतत्त्व मान लिया है। वास्तव में अपने आप में ईश्वर या परमतत्त्व कोई विशेष रूप नहीं रखता, किन्तु सभी रूप आंशिक दृष्टि से उसीका प्रतिबिम्ब मात्र हैं। अनुभव बताता है कि ईश्वर के किसी भी रूप को मानकर चलने से इच्छाएँ पूरी होती हैं। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि केवल एक ही रूप उन इच्छाओं की पूर्ति का कारण होता

है। कोई भी सम्प्रदाय, धर्म या मत-मतान्तर ईश्वर का ठेकेदार नहीं, क्योंकि ईश्वर का कोई विशेष रूप नहीं है और सभी रूप उसीके ही रूप हैं। कबीर साहिब ने उपनिषदों के ब्रह्म एवं ईश्वर के दृष्टिकोण की पुष्टि की है। ब्रह्म के स्वरूप को समझने के लिए उसके दो पहलुओं को ध्यान में रखना चाहिए। उसका एक पहलू तो यह है कि मालिकेकुल सर्वाधार अपने आप में गुप्त होते हुए इस जगत् से न्यारा है। इसलिये उसे परात्पर ब्रह्म, अव्यय ब्रह्म, अनामी आदि कहा जाता है। यह पहलू उसकी पूर्णता की तरफ इशारा करता है। इसलिये उसे निराधार, निर्गुण, निराकार आदि कहा जाता है। उसका कारण यह है कि दुनिया का कोई भी आधार या मापदण्ड उस पूर्ण पर लागू नहीं हो सकता। कोई भी गुण ऐसा नहीं है जो उसको पूर्णता का प्रतीक हो। कोई भी आकार उस पुर्ण को अभिव्यक्त नहीं कर सकता। निर्गुण का मतलब गुणहीन नहीं है, बल्कि सभी गुणों की खान है। निराकार का मतलब यह नहीं कि वह आकारहीन है बल्कि वह सभी आकारों का स्रोत है। अनामी का भी मतलब यह नहीं कि वह नामहीन है बल्कि वह किसी भी एक नाम तक सीमित नहीं है। परमतत्त्व या परमपुरुष के इस पक्ष को विश्वातीत पक्ष कहा जाता है क्योंकि वह विश्व से परे है।

ब्रह्म एवं परमपुरुष या परात्पर ब्रह्म, दयाल पुरुष या राधास्वामी दयाल सभी उसी विश्वातीत के नाम हैं। किन्तु साधारण आदमी यह भूल कर सकता है कि वह नामहीन और रूपहीन है। ऐसा सोचना एक भारी भ्रम है। सभी नाम सापेक्ष हैं, अधूरे हैं, इसलिये उनमें से किसी भी नाम को उस पूर्ण का एकमात्र नाम नहीं कहा जा सकता। इस गुत्थी को राधास्वामी दयाल हजूर शिवदयाल जी

महाराज ने बहुत सीधे-सादे शब्दों में समझाया है और कहा है :—

"शब्द गुप्त तो रहा अनाम ;
शब्द प्रगटा तो धरिया नाम ।"

यही गुप्त शब्द जब प्रकट होता है, तो रूप धारण कर लेता है और जगत् की सृष्टि रचने के लिए नाम धारण कर लेता है। उन्होंने इसी रूप को "राधा" और नाम को "स्वामी" कहा है। एक दृष्टि से दोनों रूप और नाम जगत् के दो आधार-स्तम्भ होते हुए, जब तक इस रचना एवं जगत् में हैं, तब तक वे दो हैं। वे जगत् की रचना करते हैं या स्वयं अनेक रूपों में दिखाई देते हैं। किन्तु द्वन्द्वात्मक जगत् में नाम और रूप, शब्द और प्रकाश, स्वामी और राधा उस समय तक पूर्णता को नहीं पा सकते जब तक वे अलग रहते हैं। इसलिये जब राधा विरह से सन्तप्त होकर पराप्रेम और पराभक्ति में लीन होकर स्वामी से मिल जाती है तो उस मिलन का अनुभव उसे इस जगत् में भी पूर्णता एवं एकत्व का दर्जा प्राप्त करा देता है। किन्तु इस प्रकार स्वामी में विलीन होने का अनुभव राधा ही कर सकती है क्योंकि राधा सर्वाधार की एवं निराधार की धारा है और वह विरह की तड़प में उलट कर राधा बन जाती है। स्वामी जी ने इसी उच्चतम अवस्था को बयान करते हुए कहा है :—

'स्वामी बैठक अद्भुती, राधा निरखनहार ।
और न कोई लख सके, शोभा अगम अपार ।।'

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि परमतत्त्व का अगम-अपार पहलू जगत् से परे होता हुआ भी जगत् में धारा के रूप में आंशिक दृष्टि से बहता रहता है। दूसरे शब्दों में, धारा वही पराप्रकृति है, आद्या शक्ति है जो जगत् में फैली हुई है

और जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रज, सत, तम, विराट्, अव्याकृत, हिरण्यगर्भ, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के रूपों में मौजूद है। इसलिये उसे व्यापक कहा जाता है। उसे काल भी कहा जाता है। किन्तु यह काल विश्वव्यापी परमतत्त्व है। यह सीमित रूप उस असीम का ही है जिसे हम निर्विकार, निरालम्ब और अनामी आदि कहते हैं। वह अविनाशी, असीम परमतत्त्व अपने आपको सीमित करके स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत् में खेल रहा है। इसलिये उस विश्वातीत के इस विश्वव्यापी पहलू को अनावश्यक नहीं समझना चाहिए। इसी पहलू में आकर ही वह अविनाशी, अपने आप में गुप्त रहने वाला, अनामी पुरुष स्वयं विरह से सन्तप्त होकर धारा से राधा बनता है और बहुत तेज़ी से निजधाम की तरफ लौटता है। राधास्वामी योग इसलिये सबसे सरल और सबसे ऊँचा योग है, क्योंकि इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि जगदाधार और जगत्स्वामी और राधा, ब्रह्म और माया, गुरु और शिष्य थोड़े समय के लिए अलग होते हैं और फिर एक हो जाते हैं। इसी सच्चाई को नीचे दिये गये पद्य में सुन्दर रूप से प्रकट किया गया है :-

'पहले दाता शिष्य भया, जिस तन मन अरपा शीश।
पाछे दाता गुरु भया, जिस नाम दिया बख्शीश ॥'

इसी पद्य में मनुष्य की पूर्णता का भेद छुपा है। मनुष्य अपने आप में पूर्ण है, लेकिन वह जगत् में आकर अपने निज-स्वरूप को भूल गया है। इयलिये दयाल पुरुष अनामी धाम से मानवरूप धारण करके आता है और उसे चेताकर उसका असली रूप लखाकर निजधाम में पहुँचा देता है। किन्तु निजधाम का अनुभव बँधे हुए जीव को, गुरु की कृपा से, इसी जीवन में हो जाता है। यही नाम की अवस्था है, यही राधास्वामी हालत है। इसको ही भगवान् कृष्ण ने

ब्राह्मी स्थिति कहा है। जब साधक अपने आप में और सभी प्राणियों में परमतत्त्व, परमपुरुष अविनाषी की झलक देख लेता है, तो उसे किसी प्रकार का भय नहीं लगता। न वह किसीसे ईर्ष्या करता है, न द्वेष करता है, न किसीसे क्रोध करता है और न किसीसे नफ़रत करता है। उसमें मानवता की पूर्णता प्रकट हो जाती है। वह सभी कामनाओं को अपने आप में समाविष्ट करते हुए भी, इच्छाओं के वेग से चलायमान नहीं होता और अपने ध्यान को केवल परम-पुरुष में एवं सद्गुरु में केन्द्रित रखता हुआ समुद्र की तरह शान्त और अचल प्रतिष्ठित रहता है। एक बार इस अवस्था को पाने के बाद वह मोहित नहीं होता। अन्त में शरीर छोड़ते समय भी वह इसी अवस्था में रहता हुआ परमधाम को प्राप्त होता है।

मैंने आपको संक्षेप में मानव की पूर्णता की प्राप्ति का सबूत देते हुए यह बताया है कि धर्म का असली मतलब उस सर्वाधार जगत् से परे और जगत् से व्याप्त अविनाशी अनन्त सत्, अनन्त चित् और अनन्त आनन्द के भण्डार से अपने आपको जोड़ देना है, जो हरएक मनुष्य के अन्दर आंशिक रूप से सदा-सर्वदा उपस्थित रहता है। इसी सम्बन्ध में इसी अंक में मानवता पर मेरा एक और लेख भी छप रहा है। उसमें आपको मानव की पूर्णता के बारे में प्रेरणा मिलेगी। सद्गुरु वक्त आपकी इसी पूर्णता को उभारने के लिए मनुष्य के चोले में जन्म लेता है। आदिकाल से लेकर आज तक सद्गुरु वक्त अर्थात् अवतारी पुरुष लगातार प्रकट होते रहते हैं। यद्यपि वह मानवता के चोले में वे सभी गुण और दोष, अच्छाइयाँ या बुराइयाँ, सुखद और दुःखद कर्म लेकर आते हैं और साधारण मनुष्य का सा व्यवहार करते हैं, तथापि वे हर समय पूर्णता में रहते हैं। उनका बाहरी

व्यवहार साधारण व्यक्तियों जैसा होता है, बल्कि कई बार वे अपने आप में ऐसा दोष लगा देते हैं कि आम लोग उनकी पूर्णता को पहिचान न सकें। लेकिन सच्चा जिज्ञासु और सच्चा भक्त उन्हें पहिचान ही लेता है और उनसे निःस्वार्थ प्रेम करके अपनी पूर्णता को निखार देता है। उनकी पहिचान यह है कि वे हमेशा अन्तस् से परमतत्त्व से जुड़े रहते हैं। उनका मन शुद्ध होता है। उनकी ज्ञानेन्द्रियाँ उनके अनुशासन में होती है। वे सभी जीवों में अपने आपको मौजूद पाकर सबसे प्रेम करते हैं। इसलिये उनको कर्मों का अच्छा या बुरा फल नहीं व्यापता।

सत्पुरुष के पूर्ण अवतार भगवान् कृष्ण ने अपने आदर्श सत्संगी पराप्रेमी और पराभक्त अर्जुन को सम्बोधित करते हुए पाँचवें अध्याय में सद्गुरु वक्त की व्याख्या देते हुए कहा है :—

'योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रयः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥'

अर्थात् "पूर्ण सद्गुरु हर समय शब्दयोग में विलीन होता हुआ शुद्ध अन्तःकरण वाला होता है। उसका मन और उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ उसके अनुशासन में होती हैं। वह हर जीव में उसी परमतत्त्व का अनुभव करता है, जिसका वह स्वयं वास्तविक अंश है। इसलिये वह हर जीव से निःस्वार्थ प्रेम करता है और उनके दुःख-सुख को व्यापक प्रेम के द्वारा आनन्द में बदल देता है। इसी कारण अच्छे या बुरे कर्म का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

मेरे परमप्रिय, मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप, मेरे साक्षात् सद्गुरुरूप सत्संगियो, भाई और बहनो! मैंने यह उन्मुनी हालत अपने परम सद्गुरु वक्त परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज की अपार दया और

परम अनुग्रह से केवल उनके एक ही वाक्य से 1980 में पा ली थी। उस अवस्था के पाने के बाद भी मैं उनके साथ एक वर्ष से अधिक तक रहा। 1981 के वैसाखी उत्सव पर, उनकी आज्ञा के अनुसार अमेरिका से होशियारपुर आया। उन्होंने मुझे बहुत पत्रों में यह लिखा था, "मेरे प्यारे मानव! तुम इस वैसाखी पर ज़रूर आना। दाता दयाल तुम्हारे साथ रहेंगे। तेरी लम्बी आयु हो। तुम इस सच्चे मानवता धर्म को फैलाने में सफलता प्राप्त करो इत्यादि-२।" उनके शब्दों में एक सोज था, एक कसक थी और हज़ारों वोल्ट बिजली जैसी एक ऐसी शक्ति थी जिसने मेरे शरीर को, मन को और आत्मा को इस ज़ोर से झकोरा कि मेरा सारा व्यक्तित्व बदल गया। पहिले भी मैं अपने सद्गुरु के प्रेम में मस्त रहता था। अमेरिका में हर दूसरे दिन तीस मील दूर कार चलाते हुए, जब मैं पढ़ाने जाता था, तो धूप में, बरफ में, आँधी में और तूफान में ऐसे लगता था कि मेरे परमप्रिय और परमतत्त्व मेरे प्राण और आत्मा के मालिक परम दयाल जी महाराज स्वयं ही मेरी कार को चला रहे थे। मैं तो उसी कार चलाने के दौरान में मन में अपने सद्गुरु के बारे में श्लोक और कविताएँ बनाया करता था। राधास्वामी गीत जो आप लोग गाया करते हैं उसी मस्ती की हालत में लिखा गया। परम दयाल जी के सम्बन्ध में नमस्कार-श्लोक भी कार चलाते हुए लिखे गये। किन्तु उनके दर्दभरे प्रेम से ओत-प्रोत परम दया से सने हुए वे पत्र, जो उन्होंने उन दिनों में मुझे 1981 की वैसाखी पर बुलाने के लिए लिखे, मेरी आत्मा के अन्दर घर कर गये और उन्होंने मुझे ऐसा झकोरा कि आई. सी. शर्मा के सारे सांसारिक संस्कार समाप्त हो गये। मेरी सभी साहित्यिक, दार्शनिक विश्वख्याति की सफलताएँ गौण हो गईं और मेरी पहिले से प्राप्त

जीवन्मुक्ति की अवस्था उन्मुनी हालत में बदल गई।

मेरे परमप्रिय आत्मांश सत्संगी भाई और बहनो वैसाखी के इस सन्देश को आप बार-२ पढ़ो और इसे अपने जीवन में उतारने की कोशिश करो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारे अगाध प्रेम, तुम्हारी श्रद्धा और तुम्हारा विश्वास तुम्हें सांसारिक स्तर से ऊपर उनाकर तुम्हें भी अन्त में उसी उन्मुनी हालत पर पहुँचा देंगे जिसको मैंने ऊपर दिये गये शब्दों में बताने की कोशिश की है। प्रेम ही इस जगत् का आधार है। प्रेम ही इस जगत् को बनाये हुए है और प्रेम ही पुनः उसे सर्वाधार में विलीन करा देता है। यह राधास्वामी मत पराभक्ति और पराप्रेम का रास्ता है और यही रास्ता सत सनातन धर्म का मार्ग है। इस रास्ते पर चलने से तुम्हें सहज में ही परमतत्त्व आधार के निजस्वरूप का, परमधाम का और परमपद का साक्षात्कार हो जायेगा।

इन शब्दों के साथ मैं सच्चे दिल से पुनः आपको वैसाखी महोत्सव पर सद्भावना देता हुआ अपने अन्तरतम से दिली आवाज़ से यह आशीर्वाद देता हूँ कि तुम इस वर्ष के दौरान में शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक सुख, आत्मिक आनन्द और परमतत्त्वांश सुरत की शान्ति का अनुभव करो और तुम्हारे लोक-परलोक दोनों बन जायें।

सबको राधास्वामी !

तुम्हारा फकीरमय
मानव

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

April 10th, 1990

MANAVTA MANDIR

Hoshiarpur (Pb.) India

LIGHT ON ANAND YOGA

by

Data Dayal Maharshi
Shiv Brat Lal Ji Maharaj Varman

(In continuation of Last Month's Issue)

XII

The Practice of Anand Yoga is easy ; the explanation is difficult. A Perfect Master can pave the Path as smooth as possible. As regards the Economy of Creation, if one were to describe it in full, he would make himself ridiculous in the eyes of the readers who are as innocent as sucklings regarding these subjects.

From the Crown-head centre to the 'Alakh Lok' is the static state of energy and downward sit is the Kinetic State of energy wherein is the reverse shadow or reflective image of the Great Deity. He, the reversely reflected one, found the real illuminative Deity shining in His full Glory and he bethought within himself, I am "He". And therefore he got name of 'Soham'. He is the cause of all and His sphere beginning from down the 'Sat-lok' to 'Maha-

shunya' is the 'Para Brahmand'. He being 'Para-Brahman', His Universe neeessarily becomes 'Para-Brahmand'.

This 'Para-Brahman' causes reverse refleetion below, thus creating the Subtle One. This is 'Brahman' (apt to think and grow). It is in this subtle plane of Intellect that the increasing and thinking faculty finds its full play and results into mental creation.

This 'Brahman' cast his reflections below in the gross material plane and appeared in multiple reversed reflective forms. These are called 'Pind', the embodied ones. And their plane gets the name of Gross Material plane. It is here that we mortals have our abodes.

The Trinity was in the First State. Therefore it exists in every plane that succeeded it and that tri-lateral condition finds expression in the wakeful, dream and dreamless conditions.

From the above description one should be apt to think that here below is only the reversed reflective image. The Reality is beyond and it is even so. Why man is called reversed inverted being, is explained in the article XI.

Yet, suppose a tree is standing on the brink of a lake. This tree is reflected downwards and their roots seem to be united. In the same way imagine that this reversed tree is again invertedly reflected

and the branches of the former are united with the branches of the latter which gets its root even below. Now, for the fourth time, imagine that this tree in its turn again, is invertedly reflected below. Its root is united with the root of the preceding tree, while its branches are hanging down-wards. This is MAN, and it is why we called him 'an inverted tree."

What has been said is not illogical. We admit, it is beyond our perception but it has been proved by intution and if it is not perceptible intuitively, it can at least be perceived by the faculty of discrimination.

This is the downfall of the Divine Man or it is the incident of the Paradise Lost.

XIII

With all the man's deep and systematic study, the comprehension of the subject is difficult. We wish we could describe everything in detail to our entire satisfaction, and do full justice to the subject, but it will become a rather very lengthy process. Circumstances forbid to do so. Nevertheless whatever has been said in brief, is sufficient to bring Truth to the mind of the reader.

Dissolution is the reverse of Creation, as death is the reverse life. And if one cannot understand the process detailed here, we refer him to the pages of the "Sar Bachan Radhaswami (poetry)," wherein the process of Creation and Dissolution both find detailed description. It is something like this :

"The body is made of Earth. So, when the time of Dissolution comes, its vitality, being withdrawn inwards, gets concentred in the ganglion of the rectum, for that is the proper region of the Mud or Earth. All below, it is cold, rendered lifeless, their being no spark of vitality left therein.

"Earth is the outcome of Water, or rather it is Water that gives birth or Earth. The water of the sea produces foam, and Earth is nothing but the foam condensed. The vitality of Earth, therefore, was withdrawn into the centre of the genitals, the seat of Water. This is Earth immerged in Water. Now, life is in that centre while the gland below is altogether lifeless.

"Again, as Water is the production of Fire, Fire being the original source of Water, it is turned upwards getting sucked-up and dried by Fire, and is reached to non-entity. Now, the ganglion of the navel, the seat of Fire, is hot, while below, it is all icy. Fire has its vitality herein, and others have lost it.

"Now, Fire was the result of the motion of the Wind. So, its current was drawn up and submerged in the gland of the heart. The heart is beating here, but below, all is lifeless. Thus, Fire got assimilated in the Wind or Air

"Now, it is out of Akash (Ether) that the Air

has its existence. So, in its turn, the current of Air turned itself up-wards and became one with the 'Akash'. The ganglion of the throat breaths while all below is lifeless.

This 'Akash' had its origin from the Third Pupil Centre or Command Centre, so it was taken up into the ganglion of the Third Pupil. The life-spark is there while all below is silence. This 'Manas' or Mind-Principle was the outcome of 'Prakriti' or 'Sat-Raj-Tam' the ganglion at 'Trikuti' the Abode of 'Aumkar' or the 'Antaryami'.

"Thence, the life-current is withdrawn upwards to the Primary ganglion 'Sohamkar' the region of the 'Para-Brahman'. And thus the effects have withdrawn themselves into the cause. And the perfect dissolution of the body and the universes below, has taken place. There is no dissolution in the static or Fourth Stage the 'Sat-Loka'.

WEIGHT OF THE SOUL

by

H. H. Param Sant
Param Dayal Ji Maharaj

There was a news in The Tribune of December 12, 1972, regarding the weight of human soul. A doctor of Switzerland experimented on the soul of a dying man and observed that the weight of human soul is only 21 grams at the most. He weighed one of his patients, who was just at the point of death, on a very sensitive scale and again weighed the weight of that very patient, immediately after his death. His weight after dying was only twenty one gramsless that his living body. So he came to the conclusion that the weight of that patient's soul was only 21 grams.

My own experience of lifetime proves that the weight of human soul is not even 21 grams. The soul is weightless. The 21 grams weight is the weight of man's Surat (attention), Light, Sound, Mind, thoughts and worldly cravings. Thought has its own form, colour and weight and is heavy. After reading that news, I thought about the actual weight of Surat

or Soul. I thought that even 21 grams of weight was too heavy for the weightless soul. The actual weight of real Self or soul, can only be determined after liberating the soul from the mind and its effects.

Hazur Data Dayal Ji Maharaj, while bless ng me has said, "Faqir. you will be soon redeemed." I am now liberated from mind, thought, Light and Sound. I have realized the Absolute Truth. A little while ago, while I was in trance, I was absolutely free from Mind and its effects, enjoying Light of white and blue colours. There was sound within. So far the object that enjoys the light and listens to the Sound within, has not been identified even by me. In my view it is this Absolute, which dwells in light and enjoys it, lives in sound and listens to it. That, in fact, is an unidentified Element. Sant Kabir has written in one of his songs that form and weight of this Lord Surat or Sound is much more subtle than the fragrance of a flower. I fully agree with his views.

I have already told that soul has no weight at all. Soul is thickly covered by mind, its thoughts, worldly desires and other cravings, which make it heavy. A man, who has unending mundane cravings and longings, his soul may weigh even more than 21 grams. On the contrary, a man who has minimum desires, his soul may weigh less than 21 grams. I have come to the conclusion that a heavy soul fails to go up in the upper regions, because of the weight

of mind's desires. It will be attracted towards earth under the Law of Gavity and will have to take a birth in another body according to his desires at the time of his death, and his cycle of births and deaths continues till desires and longings do exist. The same law also works in the process of meditation. You cannot fix your attention at the higher region of spirituality till yours-elf is not distracted from body, mind and thought.

Actually what people generally say about the weight of the soul is the weight of the mind, thought and desires of worldly attachments. If some aspirant really wants to be free from mind, thought and its other projoction, then he should make Sound or Absolute as his Ideal. Let the Holy form of Swami Ji Maharaj, Baba Sawan Singh Ji Maharaj, Data Dayal Ji Maharaj, Baba Faqir Chand Ji Maharaj or any other god or goddess appear to any individual at the time of his death ; none of them shall liberate that individual. The manifestation of the Holy form of any Guru, god or goddess is only the creation of one's own mind. It is not the reality, but an illusion. The soul gets attached to this imaginary form, which makes it heavy and because of its weight the soul cannot go beyond earth. Rai Salig Ram Ji has written in his book ***Prem Bani***. "Even if a Guru's form appears to his disciple at the time of his death and also makes him listen to the Holy Sound, even

then that disciple will have to take rebirth at the time, when a true Sadguru comes to this world. Because the disciple was attached to the form of his Guru at the time of his death, so he comes into close contact with the Guru in his next birth and enlightened through his discoursgs.

Sant Kabir says that human soul has no weight. If at all it has any weight, it is equal to the fragrance of a flower. According to Yajur Veda soul is all fragrance. Light has weight, when soul merges into light, it becomes a little heavy, but when it comes into contact with mind, thought and worldly longings it becomes really heavy.

THE NATURE OF SOUL

by

H. H. Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

Man is "the image of God", in his superiority to all orher finite creation and is both finite and infinite—finite in body and infinite in Soul. Nearly all the religions of the world believe in soul as the non-corporeal support of the corporeal body and as something which survives the physical death of the individual. Hinduism has elaborated extensively on the nature of the soul.

In most religions the soul and its immortality is taken for granted and its existence is accepted on faith. So, no elaborate study is made on the existence of soul, after the physical dissolution. Moreover, immortality is often attached to the resurrection of identical body as the necessary vehicle of the soul. In fact, immortality obviousiy is not the immortality of the body, but of the soul and survival is not that of the body, but of the spirit, or soul.

The theory of reincarnation is not only antagonistic to Christianity, or any monotheistic religion,

believing in God, as a loving Father, but is unavoidably essential, as the basis of the immortality of the soul and resurrection. Any religion, like Hinduism and Buddhism, would be self-contradictory, or a mere blind faith, without reincarnation, which affirms the immortality of soul. The soul has not merely two dimensions, but three—past, present and future.

The highest stage of spiritual liberation or self-discovery is attained after physical death. But to reach such a state, the individuated soul passes through numberless incarnations, progressing towards perfection, till it becomes worthy to receive the highest Grace of God.

This highest stage is very difficult to attain. Among millions of persons, a few seek this path, fewer still persist and the fewest reach the goal. Ultimately all the souls are destined to attain this stage some early, others late. All are pilgrims to the Holy Destination. But some are indolent, some are drawn to alluring sidetrips, others move slowly, only a few are enthusiastic marches. There are many stopovers in the long march towards the final Goal. The freedom of will granted to all individuals, influences the choice of speed, hesitation, or even retreat. There are some advanced souls who, having reached the Goal, rejoiu the march and help others to follow the right path.

It is very important that the soul should not be confused with the rational and biological sheaths, because these sheaths are changeable and destructible. The soul, in its pure form, is the core, unaffected by mental biological and physical changes. But there is no doubt that the rational choice in man is very important and powerful, in the soul's journey, through these changing planes. The immortality of the Soul has been called Manomaya Prana or psychic vitality.

The Gita says, "That Being (Soul) which, as the the ground of entire existence, is indestructible. The bodies, which this eternal soul puts on, are terminable but the soul itself I is imperishable. No one is capable of destroying that invisible Force. A person who considers the soul (pure-self) to be the killer and also a person who considers it to have been killed, both are ignorant, because the soul neither kills, nor is it killed. It is neither born, nor does it die in time. It does not come into being, nor has it any future time to become again. Immortality is above past present and future ; it is an eternal continuum. It is unborn, permanent, ever-existent, ancient and is not destroyed in the perishable body.....Just as a man puts on new dress after casting off the old one, similarly, the soul puts on a new body, after laying aside the old one. Neither weapons can cut it, nor can fire burn it, nor water can moisten it, nor can

the air dry it up. It is immune to cuts, burns, wetness and dryness. It is ever existent, stable and stationary. It is invisible, unthinkable and is incorruptible in itself.

The Chhandogya Upanishad States, "The Self, is free from evil, ageless, deathless, sorrowless, hungerless and thirstless whose desire is the Real (longing for God). An individual, who understands the soul or self, obtains all worlds and all desires. The realization of one's Self is indicative of the growth and development of his personality. When a person comes to know his 'Self', he spontaneously behaves positively, renouncing hatred, jealousey and selfishness all of which bring him peace and tranquility. The attainment of Self, or the Self-realization is the ultimate Goal of all individuals.

The soul-entity (being subjective) has the advantage of being a conscious perceiver. The soul, unlike the body, is aware of its own existence. Although soul is neither body, nor mind, nor intellect, yet it uses these aspects of personality as instruments of expression. The Soul or Atman is the source of all objective knowledge and experince.

The soul is an entity which is uncorporeal but individuated, and which when embodied, is the nucleus of the rational, mental and physical aspects of human personality. This subtlest aspect of man's total (intellectual, mental and physical) constitution is not

mere consciousness, but something more. On the one hand, this individuated soul or spirit has contact with the spatiotemporal world through sensuous experience, and on the other, it has contact with the spiritual realm beyond time, space and causality. An embodied soul or man is an integrated whole of body, mind, intellect and soul. But soul itself, being independent of the intellect, mind and body, is greater than the sum of these. It is free and is their very activator. In describing the subtle nature of the soul Gita says, "The senses are subtler than the body, the mind is subtler than the senses and subtler than mind is the intellect and subtler than the intellect is the soul or spirit."

The soul transcends the experiences of the senses, because it is always the subject, standing above the objects apprehended above the experience. In the triad of knower, known and knowledge, it is the knower that stands above the other two. Hence the knower is called transcendent. Similarly, in the dream state, the knower-self is ever present and ever experiencing.

There is no consciousness, no sense-perception, no imagining, or even dreaming, when we are in deep sleep. We are in virtual death, so far as the experiences of the subjective self are concerned. But upon awaking from the sleep we say, "Oh, I enjoyed such

a sound sleep." Does this not empirically indicate that, in spite of the discontinuity, the Self as the agent has continued to exist ?

Beyond the state of deep sleep is the state of Turiya (the transcendental soul existence). In this state the conscious, the sub-conscious and deep sleep levels are transcended. But this does not imply annihilation of the other levels, rather, it means amalgamation of the other three into one continuity—one-wholeness. The Turiya state, which is obtained by Yoga, is the fourth dimention of the mind, which rises above the relativity of the three dimensions of human experience. Seventy-five years ago the theory of the invisible soul might have been doubted. Its immeasurable potentialities of rising above space and time would have been ridiculed, but it is not the case today.

In fact, Soul is not a dogma, but a fact. It should not be accepted as a mere belief, but a reality, not an imaginary phantom, but an existent entity. If the soul is unobservable by today's known instruments so is the atom and electron. The subtlety of a fact should not deter a scientist from recognizing it as a reality, if its effects are clearly determined.

People doubt the existence of soul and ask : what is the empirical evidence for the existence of the soul as something beyond body, beyond mind and beyond

intellect ? Without such evidence, any theory of the immortality of the soul, including the theory of reincarnation, must crnmble. Soul is the awareness, or the subject of all experiences and as such, is self-evident. For there can be no knowledge without the knower, no thinking without the thinker and, in short, no experience without the experiencer or agent. This empirical evidence of the Soul as subject, is so strong and unavoidable that rational rejection is impossible. No one can ever conceive the possibility of a situation where the knowledge and the known could ever be present without the knower, or the feeling and the object felt could be present without the subject who experiences the feeling. The Soul, although an existent phenomenon in conscious experience, is the knower, never the known, always the perceiver, but never the thing perceived. No known fact and perceived thing ean ever be apprehended without the presence of the soul. The Upanishads say that, "Unseen it sees, unheard it hears, untouched, unsmelled, untasted, it experiences the senses. The discovery of the Soul is a Self-discovery. It is a consciousness which does not need any outward object, but an inward gaze. It (Soul) is the centre of all centres, Truth of all truths and the core of human personality. It is an invisible activating psyche force.

Religion is not an inner experience of the Soul, but an ostentation of a dogma, whose profession is a matter of convenience in day-to-day life. This is what appears to have happened today to religion the world over. The spirit of religion is neglected and the forms and ceremonials are magnified. Some people ask, why does this unvisible potentiality (soul) bind itself to the spatio-temporal world and take births ? The answer is that the individual Soul has to work out its Karmas to make the right choice of ascending back to the divine level and ultimately experiencing at-onement with the Maker. The sole purpose of taking birth again and again of an individual soul, is destroy the accumulated Karmas, to empty the self of all the impediments to its self-luminosity. It is the privilege of man and not of the animals, or material nature, to work consciously for the reunion of the soul with its Maker. In human life, through the combination of spiritual and material, the Soul makes a final effort to release itself from its limitations and to attain the highest level of Self-realization.

A letter from a young teenager from England. (the niece of Bhagya Mataji).

My dear Guru,

How are you ? This is my second letter to you. This one I am writing in English, because my Hindi is very poor. Your monthly message of October was excellent. You have mentioned and described about Sant Kabir so beautifully. I believe that you have read thousands of books to preach. You are the most intelligent and well-respected person. I am really very lucky that you happen to be my dear uncle and also my respected Guru.

I know that a few people understand fully whatever you write or say, but most of the people don't have the intelligence to understand you. Many people don't understand even me. How can they understand you ? You are Super.

In the monthly message of November you say :

"The West is West and East is East ;
The twain shall someday meet."
Starving is West and overfed is East ;
The East will provide the West a spiritual feast.

I say :

"West is West and East is East ;
The twain will definitely meet.
Overfed is West and starving is East ;
The West shall provide the East a feast.

I think that East is suffering from many famines and is starving much more than the West. I will definitely make the East and West meet through my writings, but I will always be fascinated by East. The West, especially England, depresses me and give me heartach, when I see such a tom society.

Dear Guru ! I shall never forget the miracle of a day, when you rang me up at my residence early in the morning and told me that you were sending blessings to me. That very morning the bus driver took me straight to my college for my exams. My papers were excellent, including different cultures of Wales and racial integration in them. I believe I felt then that the examiners had read my poetry book ***The Inner Voice***. I believe in miracles dear Guru uncle ! I felt as if some power was working behind me, when I was taking the examination.

I want to come back to India at least for a year or more. I believe in action. I want to be away from England and my family. I want to lose lot of weight and wear a while Sari everyday. I want to meditate under Your Holiness guidance. I want to go to the tops of hills with you and Bhagya Aunty, where we would meditate for hours continuously. My dearest Guru ! I promise to put all my heart in meditation while in India. You are so great, I have come to your refuge. Please do help me in my spiritual advancement. I love you. Please do reply.

Yours own
Leena Khurana.

These letters written by the American Satsangies to H. H. Manav Dayal Ji Maharaj, clearly speak of their deep love and reverence they have in their hearts for His Holiness.

Acharya Dr. Jonathan Peters
Professor in Maryland University
MARYLAND U.S.A.

Dear Dr. Sharma,

You have been in my thoughts even before I received the letter you sent me a few months ago. I planned with each passing day to write you, but I wanted to send along with my letter a tribute to you for all the help you have given me over the years.

My plan was to write a long poem on the effect of your teaching. But, try as I might, I could not get past the first words which are reproduced here in the sonnet I am enclosing. You see, over the last few months I began writing poems or what I modestly call "musings" (no relation to muse !) and I saw no way more fitting than to dedicate one of these to you.

What came to me early this morning after almost three months of frustration was the idea to write a sonnet which, once the decision was made, came quite easily to me. Please consider it a token only of the way I have been blessed by your teaching. Though condensed, it still expresses the essence of what I intended.

Although I was unable to write, I carried out your instructions for the seminar as you will see from the materials Thelma will hand you. We have a seminar room reserved at the Interfaith Center in Columbia's west side for all day and night on the 23rd August. We have sent out notices to over a dozen newspapers, radio stations and television stations to make public announcements and we have also sent out a mailing to over 70 members. Regrettably, I fouled up on the first seminar in Arlington, because I took a package of Robert McEwen's notices with me to the airport as I was leaving for Canada intending to mail it to Thelma. Alas, I did not have Thelma's address and the package went unmailed and neglected. I will have to make up for that some other way with Bob.

My meditation has been moving in leaps and bounds since November. The block I had has been removed and I am now able virtually to focus my internal gaze in the crown area. I also have developed insights into many things, a byproduct of this inner search. The poetry writing is one instance. I have more than two dozen written of which I am sending along a few with Thelma if I can catch her before she leaves.

Please feel free to call me collect on my long distance number, (301) 730 0330 as our regular number, (301) 596-3337 is local only from Washin-

gton. The 730 number is local from Baltimore.

The trip I mentioned to Canada was a vacation for the family which we took from July 5 to 10. We will be going to Atlanta two weeks from now for a week (as a matter of fact I will spend most of the time in Florida) and will be returning late on Friday night to be in town for your seminar. If possible I will try to see Gloria Albritton while I'm in Florida.

I'd hoped that we would have had a varied program which would have included psychic readings by Marge Guercio who has become extremely able. She reads past lives as well and can offer full scale readings on the telephone directly to the people concerned or to others who know them. She is perhaps more gifted than Sallie Riegler. The majority of those present at the meeting preferred, understandably to get a full dose of your message rather than have what we after all distractions such as I intended. My feeling on the matter is, however, that since you are not half as well known in the U.S. as in India, people have to be distracted before they can become attuned. Indeed, I was at first so distracted myself, with my interest in psychism and then was diverted to the truth by your teaching. I believe it is one of the issues that will need to be addressed if International Pathway of Humanity is to become a household word.

Now that you are in the U.S. again, I hope to have one or two opportunities to talk with you, but

of course I will give preference to those newer workers who need you more. I am holding steady in the course, as the meaning and purpose of life in general and mine in particular become clearer to me. I am already overwhelmed by the work of providence in helping to shape my life. I am at peace within and look forward to doing my little bit to help reorient the world towards the truth of all that is.

Love and blessings for your work here and elsewhere. Radhaswami

Jonathan.

GUIDING LIGHT
(For Manav Dayal, Man of Compassion)

Through a glass darkly I once dimly saw
My sight impaired by cataracts, my plight
Imperfect teaching promising full light
On Judgement Day's accounting by the law.
My questing soul was baffled to the core
That I must wait to learn of wrong or right
When knowledge could not help me in the fight
To win the crown by adding to my score.
But your compassion changed that. Now I know
The keys to mysteries long kept in a haze :
Our fate below, our future life above,
Suffering and death, our reaping as we sow.
You proved the glass illusory ; now I gaze,
Light's cataracts flooding me with divine love.

1st August, 1986

Letter of Savely L. Savva of Dallas, Texas.

To

H. H. Manav Dayal Dr. I. C. Sharma

Dear Dr. Sharma,

I did not write you earlier, because I had committed myself to studying your book "CAYCE, KARMA AND REINCARNATION". This study took me some time, and I just recently finished. Yoga exercises and meditation take $1\frac{1}{2}$ hours every day. Spiritually, I feel quite strong, though not as strong as in December, when I was with you. Yet this enables me to stand frustration of my wife : she cannot take the uncertainty. Physically, I still have some problems with my digestive system. I hope you are well and at peace as you are supposed to be.

I consider you so much beyond and above a regular human being that I have decided to share with you some of my doubts and criticisms regarding your book. I have read the entire book with great interest. However, I ordered three additional copies from the publishing house and gave them to my friends. I feel that it is a most enlightening and concise introduction of Hinduism to a Western intellectual reader. I believe also that the book has very substantial theological significance, attempting to recon-

cilc Judeo-Christian and Hindu religious doctrines. At the same time, the book provided me the grounds to formulate my differences with Hinduism as a system of religious doctrines.

Without any reservations, I can accept your statement at the end of the book : "The only advantage to studying the theory of reincarnation and the doctrine of Karma is to give a methaphysical basis to religion." (page 169) It certainly does not exclude the pure educational value of the study, which I most appreciate. And indeed, earlier in the book (pages 38-39) you write concerning similarities between science and religion that ".....science and religion have a similar stimulation and approach to truth, with a similar goal of catholicity. .....The truth is one, the function is one, the goal is one." To me as a scientist, this latter statement seems most appealing. However, here I do have reservations. I can (and do) accept the idea of God as the Supreme Idea, Creator of the law of nature and of all the material Universe. But this has nothing to do with religious perception of the world. I am rather a Platonic realist. On the other hand, I seriously doubt that religion (in principle, Indian religions in particular) can be reduced to its cognitive function, including recognition of God and comprehension and development of our souls. The social function of religion, which is the regulation of human social

behaviour (by means of stick and carrot), is inseparable and as important as the first. The concept of "Free Will" making an individual responsible for his social behaviour is an immanent part of any religion. Along with sets of moral norms, indicating what is right and what is wrong, personal responsibility directs individual behaviour in a socially desirable way. But how can it coexist with phenomena such as clairvoyance, astrological predictions and others recognized by Hinduism, which clearly supports determinism ? It becomes clear that Judaism and Christianity, being born in a form of strong social organization capable of providing political control over societies, must be even less tolerant to any shade of determinism then Indian religions.

Conceptual values of Love and Grace have exactly the same meaning and as contradictive as other religious dogmata. Why would an omnipotent God need to be loved by his creatures, whether worms or humans ? Assuming that He does, why couldn't He make them love Him as He made them love sexual pleasure, or eating, or their off-spring ? Indian sages were the first to recognize the cyclic development and destruction of the Universe (I personally consider the image of the breathing Brahma one of the greatest cosmological hypotheses). Now, if the God's plan includes destruction and death as creation and birth, how one can destroy and kill

with Love and Grace ?

I want to share with you one funny observation concerning God's plan. First, I would like to point out that I do not at all put down the importance of great prophets. Nostradamus' prediction that the Earth will not survive till the year 4000 a.d. doesn't seem out of line to me. The common way, however, is that science discovers rules by which the Universe is created, and somewhat meaningful hypotheses concerning the unknown are based upon extrapolation of known laws. And here is the story. Some 25 years ago on a rainy Leningrad morning a friend and I asked ourselves, "What is the purpose of life as a Universal phenomenon ?" We departed from available scientific knowledge and we would accept Spinoza's pantheism. Man's short life span is incompatible with the distance between possible civilizations in the Universe, therefore the solution had to be found within the planetary system. The only purpose we could discern was intensification of erosion and destruction of the planet. B ological evolution (and we would not deny L.S. Berg's "Nomogenesis") lawfully leads to development of a thinking and creative species, capable of concentrating all available earthly energy resources and blowing up the whole planet. Why ? Because what is certainly known is that Nature (God) likes the most random distribution of mass and energy in space. This is reflected in the Second

Law of Thermodynamics. So humans can accomplish in some thousands of years what otherwise would require billions of years. I would certainly appreciate other more optimistic hypotheses.

Being a noted "arguer", I have made numerous remarks in the margines of your wonderful book. I don't think it is possible to discuss them in a short letter. Yet, I take courage to call your attention to another point of Hinduism, which I have difficulty with. Hinduism has no dimension of God that would be equivalent to the social level of organization of matter. This is quite characteristic for any religion possibly, because rules, controlling human social behaviour are deeply impregnated in religious dogmata and basic concepts. However, there is no living being who is not a member of some population (herd, school, flock, pack, etc.) or human association (territorial, ideological, ethnic, economic, etc.). As physical, chemical, biological levels, the social level of organization is ruled by its own set of laws which are not reducible to that of lower levels. In other words, using the proposed vacabulary, we have to ascribe a sort of soul to any social organization. This is quite interesting in view of the eternal problem recognized and discussed many times in Indian history : contradiction between love (man) and social duty (society). In the Western world Nicolo Machiaveli has most clearly spelled out the point that

politics (government, management) cannot be judged by common moral norms.

Social philosophy is a field of my long-lasting interest. I have written a few papers on this subject (and was not able to publish any in the U.S.). Perhaps I am not ready yet to write a book, not to mention that I wouldn't be able to work without the necessary material support. The way I conceived the book would require extensive cross-disciplinary research and, according to my wildest dreams, it would be produced by a team of similarly inclined specialists in various fields of knowledge (science, history, philosophy, etc.). What I have to say is reduced to a concise outline : theses named "Philosophy of History." I am sending you a copy of this and I would be very glad, if you choose to read it and, perhaps, let me know of your opinion.

Dear Dr. Sharma, I am still dreaming of a twist in my destiny bringing me to holy India, may be even Tibet. My fascination for the culture of Yoga and the phenomena of cultuvated human psyche as well as rare individuals possessing outstanding psychic gifts, is limitless. Unlike social philosophy, it is all mysterious and magnificent. I do believe in your God's gift, and you would be the first I would like to meet there (I remember and deeply appreciate your kind invitation).

Here's wishing all the best for you and yours and in your holy mission, I am

Most faithfully yours

Vaisakhi Message

OF

H. H. PARAM SANT HAZUR MANAV DAYAL
Dr. I. C. SHARMA JI MAHARAJ

My ownself in the form of Satsangis,
Blessings of the Supreme Being and Supreme Compassionate Person.

We are celebrating the Vaisakhi Festival as usual this year. This celebration is significant not only for India but for the whole world. As I have already stated a number of times, the word Vaisakhi of which the word 'Baisakhi' is a simpler version, has very deep meaning. This word is the combination of two Sanskrit words : Vai and Sakhi. Vai means Akash, space or infinite extension of the cosmos, and Sakhi means that Supreme Being who is beyond the cosmos and yet is the ground of all existence because It is Perfect and complete in Itself. It is called Sakhi or Witness because It is the unchanging Basis and Ground of the changing cosmos. Thus It is the Ground as well as the transcendent Reality beyond the cosmos.

Sakhi is not affected by the changeability of the cosmos. It is not affected either by the creation, or the sustanance, or the dissolution of the cosmos.

And, as such, It is the constant eternal, everlasting Witness of all the changes. That is why It is called the Fourth Dimension. It is the Point standing above the word "AUM" (ॐ), where "A" stands for the physical, "U" stands for the mental and "M" stands for the spiritual existence of this coemic Reality, but the Point beyond these three is the Pure Self which, in human constitution, is called Surat. This Pure Self enlivens, activates and vibrates the physical, the mental and the spiritual aspects of the cosmos as well as the body, mind and soul of the individual, inspite of vibrating these three bodies, whether in the cosmos or in the individual. It is Pure Consciousness, Pure Self, unadulterated Reality beyond all relativities and the Repository of Supreme Bliss in Its original form as a Pure Witness.

Radhaswami faith—The Religion of Humanity —The Eternal Cosmie Religion—beginningless and endless, is the last rung in the development of what is called Sanatana Dharma. The goal of this Universal Religion is to invoke in man that sense of Witness or the sense of Perfection. The Incarnation of Saint aims at the same purpose. He descends on earth to take the suffering souls beyond the 3-dimensional corners of Time. Space and Cause. The awaking of this state does not bring about anything new. Every soul is Perfect by its own right. The

state of the Witness is already present in the Soul, but due to ignorance and infatuation he or she has forgotten his or her Perfection. The individual wrongly identifies his ego with the Pure Self. Param Dayal Ji Maharaj founded Manavata Mandir and started his spiritual discourses on Vaisakhi day with a view to awaken the slumbering humanity to self-awareness. The Vaisakhi festival being celebrated to-day is the ninth one after the departure of Param Dayal Ji Maharaj. However, uncertainty, violence and hatred dominate all over the world today. Hence the whole humanity is in bad need of Manavata Dharma the Religion of Humanity. Manavata faith is not a particular sect or social institution ; nor does it stand for any special great personality ; nor does it indicate any particular philosophic school in any particular limited sense. On the contrary, it is a way of life based on man's Perfection. It is the name of that Truth in search of which all individuals are constantly engaged. Change is rife all over the world. Everything changes with the change of time including the interpretation of the word 'truth'. These interpretations seem to change the definition of religion, even though the eternal Truth is not subject to any change whatsoever. As a matter of fact, the word 'Dharma' has not been properly understood, as a

result of which there are dissensions, differences and disagreements among all religions. The misunderstanding created by such an attitude cannot be removed easily. There are constant religious conflicts all over the world in every nook and corner. This age is the Age of disturbance, terrorism, violence and hatred. Terrorism and killings are visible in every nook and corner of the world.

This misunderstanding about religion is the cause of all destructive tendencies. The word "Dharma" in Sanskrit, which is translated as religion, does not stand for a cult or sect. Commonly the word religion is interpreted as an institution or a dogma-ridden society. It is from this point of view that Hinduism, Buddhism, Islam, Christanity, Jainism, Judaism, Zoroastrianism and Sikhism etc. are considered to be religions. This definition of religion is too narrow and illogical.

The true religion of Humanity is beyond these sectarian views of religion. The adoption of religion of Humanity or Humanistic Religion puts an end to the religions conflicts, dissensions and discriminations. As a matter of fact, all the so-called religions, philosophies and sciences have come into being for man and by man for the attainment of real humanistic ideals. No other living being than man has invented these institutions and the disciplines of science,

religion, society and political institutions. It is, therefore, evident that all the disciplines arise out of man and culminate in man.

As a matter of fact, in almost every major religion man has been considered to be superiormost reality in the cosmos. All the religions also believe in the omnipresence, omnipotence and omniscience of God. The founders of all religions have clearly stated that God is Eternal, beyond space, time and cause, and that only a part of His is present in the external world. Man, being—the real image and replica of God, has the potentiality of omnipotence, omnipresence and omniscience. However, the followers of these religions deviated from the basic Truth of the oneness of God and the sacredness of man. As a result of this, humanity has been divided into thousands of religious sects, each of them blaming the others.

Manavata Dharma or the religion of Humanity does not deride any religion. It recognizes unity in diversity. Man himself is the unity in diversity constituted by his physical body, his conscious mind, his causal soul and his Pure Self which enlivens body, mind and soul in waking consciousness, dream consciousness and deep sleep consciou ness respectively. The aim of religion of Humanity is to bring about the integral development of body, mind, soul and

Pure Self. This leads to the actualization of the potential perfection of man who is nothing less and nothing more than the replica of God. This attitude frees religion from becoming a cult and ambiguated organizations. That is why religion has become the sole cause of internecine conflicts, wars, terrorism, torture and hatred. The only remedy to save humanity from this destructive trend of religion is to follow Manavata Dharma. As already stated, a true human being is one who recognizes each and every individual as divine embodiment of love and the only true and living expression of God. When a person becomes purely human, his potentiality of Perfection becomes actualized. He comes to recognize that all human beings are one as human beings, and the differences of caste, creed and religion are ephemeral.

This truth is contained in the cosmic sound "OM" (ॐ) which is constituted by A-U-M and a point above. I have pointed out to you a number of times that the letter 'A' stands for creativity—the cosmic physical reality called Brahma or Creator. This is the omnipotence of God. The letter 'U' stands for the subtle omniscience—Cosmic Mind—which sustains the physical cosmos. This very subtle omniscience is designated as Vishnu. The letter 'M' stands for the seed—causal body—which is constituted by Pure Light and is full of Bliss. This aspect

is called Holy Spirit or Shiva. As already suggested, the fourth dimension—the point above 'OM'—is the Supreme Being beyoud the physical, mental and spiritual levels. It is the Supreme Ground of all that exists, lives and has its being. This Supreme Ground, called Sarvadhar, is the Ultimate Dharma, that on which everything stands, from which everything is created and into which everything is merged.

This very Supreme Reality is called Param Purusha—Supreme Persen—by the sages and Dayal Purusha—the Compassionate Supreme Person by the Saints who actually experienced the Fourth Dimension in their life. In the case of individual, this very Indestructible, Infinite Element, is called Surat or Pure Self. The entire Cosmos (the physical, mental and spiritual dimensions) is in harmony because of the Supreme Ground—the Supreme Compassionate Person. The discipline and harmony in the cosmos represents the Law which connects the cosmos with the Supreme Ground as the Ultimate Dharma. Thus Dharma, which has been translated as religion, in its ultimate stage, is beyond all relativities. In order to attain this Ultimate state of Dharma or the Fourth Dimension, an individual must lead a life of harmony and discipline. Thus this discipline or harmony is also Dharma.

The cosmic aspect of the Lord shows that the

entire cosmos is being run on a harmonious Love or a Supreme Discipline. Therefore Universal Religion propounds that man should lead a life of discipline. The entire cosmos is, therefore, based on the Principle of Cosmic Karma or the Universal Law. The gods and goddesses are nothing but the forces representing humanity. Therefore they are, in a way, performing their duty towards the Supreme Being with the attitude of self-surrender. Thus man's Supreme Dharma is to submit and surrender himself to the Supreme Master. That is why all the religious ultimately believe in complete surrender to God in one way or the other.

Every religion aims at uniting man with God of whom he is a true replica. This level is attained by the practice of Supreme Love, which is recognized by all the religions as the Supreme Path as well as Supreme Goal. In this sense, all the religions are basically one inspite of the ephemeral differences of traditions and dogmas.

The founders of all religions have practised the Path of Love and Truth and have laid this very Path for the benefit of their followers on the basis of their experience. Thus they laid down the foundation of Manavata Dharma or Universal Religion. Unfortunately the followers of almost all religions deviated from the experimental aspect advocated by their founders and reduced religion to customs and super-

stitions, thereby neglecting Love and falling victim to hatred, thereby giving up harmony and indulging in conflicts.

Instead of experiencing God themselves the followers of religions idolized their founders, prophets or Avtaras taking them to be the only personified God and thereby ridiculing the other forms of God or Supreme Being experienced and advocated by other raligious leaders. This narrowing down of the Supreme Being as a limited historical God on the part of fanatic and dogmatic creeds, has been the cause of religious conflicts and hatred. In fact the Supreme Being is not limited to any particular form or personification in His Own True Nature. However, all the the forms are the reflections of the Supreme Being in a partial way. The experience tells us that one's desires are fulfilled miraculously by accepting and worshiping any particular form of God. This, however, does not mean that only one particular form can fulfili one's desires. The fact is that uo religion, no sect, no race can monopolize God, since God is not limited tc any particular form, and all forms are His forms.

This Upanishadic approach to God as Brahman has been confirmed by one of the greatest mediveal Saint, Kabir Sahib. One should keep in mind two aspects of the Supreme Being while trying to under-

stand the form of Brahman. One aspect of the Supreme Being—the Supreme Master, the Supreme Ground—in His unmanifest acosmic or transcendental which is wholy other than anything that lives and has its being. Therefore this transcendental aspect of God has been designated as beyond–beyond (परात्पर) Supreme Being, as inexhaustible Brahman (अव्यय ब्रह्म), Nameless (अनामी), Dayal Purusha, Uncut Block, so on and so forth, by different religions. It is in this sense that God is referred to as (निराधार) having no ground, beyond attributes, (निर्गुण), Formless etc. The reason for this negative approach to the Supreme Being is that no basis or ground or foundation or standard of measurement can be applied on that Perfect Being. There is no attribute or quality which can express the Perfect of the Perfect. No form can fully manifest that Perfect Being. Beyond attributes or attributelessness does not mean that the Supreme Being is devoid of attributes and is a vacuum. On the contrary, it points out that He is the repository of all the attributes. When we call Him as Formless, it does not mean that He is devoid of form. On the contrary, it means that it is the repository of all forms. Similarly, the adjective Anami (अनामी) or Nameless does not mean that He is devoid of name, when actually it means that He is not limited to only one particular Name. This

aspect of the Supreme Element or Supreme Person is designated as Transcendental or Acosmic aspect of God who, inspite of being partially present in the cosmos, is beyond cosmos.

Let me repeat that Brahman, Supreme Person, Paratpar Brahman, Dayal Purusha or Radhaswami Dayal etc. are the names of this Transcendental Supreme Being.

A lay man can easily misunderstand the word Anami as devoid of name and the word Formless as devoid of forms. Such a conception would be a greatest blunder. All the names are relative and incomplete. Therefore, none of these names can fully represent that Perfect Person. Therefore no name can be the only Name of God. This complex problem has been solved by Radhaswami Dayal H. H. Shiv Dayal Ji Maharaj in a very simple and intelligible language :

'The Supreme Sound is nameless in Unmanifestation ;
It assumes Name during manifest Creation.'

This very unmanifest Supreme Sound (शब्द ब्रह्म) assumes form when it becomes manifest and assumes Name from the point of view of the creation of the cosmos. This very form or manifestation has been designated as Radha (राधा) and the Name of the Supreme Manifestation—Sound has been designated as Swami. From one point of view both the Form

and Name are the pillars and the Ground of the cosmos. As long as they are the cosmic creation, they remain dual during the creation and thus continue to create or manifest themselves in various forms and names. But these dual real aspects of the Supreme Being—name and form, Sound and Light, Swami and Radha—cannot regain the Perfection as long as they stay separate. Hence, when Radha feels the pangs of separation and being drowned in Supreme Love and Supreme Devotion, reunites with or consummates itself by merger into the Swami, it experiences Perfection even while living in the cosmos of duality. This Supreme Love or the experience of consummation brings the individual to the state of oneness. However, this highest state of merger into the Supreme can be experienced only by Radha because Radha is, in fact, the current (धारा) of the Supreme Source (आधार), and it becomes Radha (राधा) only when it feels ths extreme longing to reunite with its Source. And when it turns around in Dhara (धारा), it changes into Radha (राधा). This very turning around is called the Up-side-down Path (उल्टा मार्ग). Swami Ji Maharaj, while describing this process of the Radha experiencing the fathomless and infinite Glory, has said :

'The glory of wondrous Swami does everything transcend;
Which other than Radha none can ascend.'

This expression makes it clear that the fathomless, wondrous, transcendental aspect of the Supreme Being inspite of being beyond the cosmos, is also partially present in the cosmos in the form of current (धारा). In other words, Current (धारा) is the same creative Nature, original Energy (आद्या शक्ति) which is omnipotent, omnipresent and omniscient in the cosmos as Brahma the Father—the Creator, the son Vishnu the sustainer and Shiv the Holy Spirit, which have been designated as the Cosmic Person (विराट्), the Universal Cosmic Mind (अव्याकृत) and the causal seed of the Supreme Light (हिरण्य गर्भ) respectively. These very aspects are the physical body, the subtle body and the causal body. That is why this is called the immanent aspect of the Supreme Being. That Supreme Being, however, is Indestructible, Ever-lasting and Eternal.

When the Jivas (जीव) or the manifested souls forget this Indestructible Perfection in themselves and are caught up in the mesh of time, space and cause —the three dimensional cosmos, the Supreme Being descends from His Supreme Abode in the form of human being as the Perfect Master (सद्गुरु) and awakens them to the state of Perfection. Lord Krishna also stated that this is the highest spiritual

state called the Brahmi Sthiti (ब्राह्मी स्थिति).

The realization of this Radhaswami state or the Supremely Spiritual state by the Grace of the Supreme Living Master makes an individual aware of his indestructible (अविनाशी) Self and thus he becomes fearless. He neither hates anyone, nor is jealous of any one. Neither he is angry nor disturbed, because he feels himself one with every individual on account of being connected with the same Indestructible Pure Self which exists in him and in every being. He does not run after his desires and longings. All his desires and emotions enter into him without making him deviate from his calm and balanced nature. This very state of awakening remain permanent and at the time of leaving the physical body he attains the Final Abode. This very Perfection of man is the real Vaisakhi i.e., the state of remaining Pure Witness of the Cosmic Motion.

I have briefly tried to explain to you that the real Dharma or religion is the Supreme Ground which is beyond the cosmos and yet immanent in everything that exists, lives and has its being. It is manifested as the physical Existence (सत्) behind which is Eternal Existenee, as the mental Existence of consciousness behind which is the Eternal Consciousness

and spiritual Existence—Bliss—behind which is the Eternal Bliss. Thus the Real Self (साक्षी) in man is the source of Existence (सत्), Consciousness चित्) and Bliss (आनन्द). This source and core, again, is the Real Man and the Real Witness or Vaisakshi (वैसाक्षी).

I am sure that you have understood that the Sadguru the Supreme Master assumes the human form to lead the ignorant, innocent and credulous souls back to the spiritual awakening in this very life which ultimately leads them to the Supreme Abode.

My dearest own selves and the symbol of my Supreme Master, satsangi brothers and sisters, I can tell you that I had attained this very state of Vaisakhi or Radhaswami state long ago, but the highest experience of this state, which is Indescribable, which is called Spontaneous state (उनमुनी अवस्था) of God-consciousness, was awakened in me in the year 1980 by the Grace of the Supreme Master Param Sant Param Dayal Faqir Chand Ji Maharaj, just in a minute during his stay with me in Cleveland, Ohio, U.S.A. I returned from America and came to Hoshiarpur in 1981 to obey the orders of my

Supreme Master Param Dayal Ji Maharaj. This was the occasion of the Vaisakhi of 1981. He had urged in many of his letters to attend this great celebration positively. In one of these letters he said, "My dear Manav, you must come to this Vaisakhi under all circumstances." In another statement he said, "Data Dayal will always be with you. May you live long. You will be successful in propagating this True Religion of Humanity," etc. etc.

There was a special attraction and charm in his words. These words touched me like a strong current of thousands of volts of electricity. These words awakened me to a New Dimension and my whole personality underwent this Metamorphosis I was already awakened with the Law of this Supreme Master and I was lost into Him. In U.S.A. I had to drive thirty miles every alternate day to teach in a college. I had to drive in sun and rain, in snow and storm, while sitting on the wheel in the car. I felt that the car being driven not by me, but by Soul of my Soul Param Dayal Ji Maharaj Himself. While driving the car I composed verses

and slokas in the praise of my Sadguru. The Radhaswami song, which has become popular among the satsangis, was composed by me while driving the car. The salutation verses, written about Param Dayal Ji Maharaj, were also composed while I was driving. But the letters written by Param Dayal Ji Maharaj were so much drenched with Pure Love that they entered into my Soul before I left U.S.A. for the Vaisakhi of 1981. In fact, all my previous achievements as I. C. Sharma and even the spiritual attainments of I. C- Sharma, disappeared when I attained the Supreme Radhaswami state which is indescribable.

My dearest Supreme Self satsangi brothers and sisters, do read this Messsge of Vaisakhi again and again and try to apply it to your practical life. I am fully confident that your deep love, your conviction and your unshakable faith will lift you up from the level of your empirical world and bring you to the highest state which I have described above. Love is the Ground of this Creation. It is the Purpose and the Goal of our life. This very Love will take you back to and merge in Radhaswami Dayal. Radhaswami faith or the Manavata Dharma—Religion of Humanity—is the Path of Supreme Love. This

very path is the Path of Supreme Religion (Sanatana Dharma). You will attain this Supreme Abode and realize your Supreme Original Self without any effort by following this Path.

With these words I very sincerely convey to you my best wishes on the occasion of Vaisakhi and bless you from the core of my soul with the desire that during this year you may attain physical health, mental happiness, Spiritual Bliss and the Supreme Peace of the Pure Self. Your worldly as well as other worldly requirements may be fulfilled.

Radhaswami to all.

Yours in Faqir
Manav.

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी राधास्वामी।
अलख अगम और अनामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
परमसन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी॥
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर।
दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी॥
राम भी हो और कृष्ण भी तुम।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी॥
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि॥
मी, राधास्रामी, राधास्वामी॥
दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राथास्वामी॥

Regd. No. 26265/74
MANAV MANDIR

APRIL 10th 1990
NWHSP—7

Address

415 Preside t Radha Swami
Sat Sang Bhawan via Pitlam
Nizam SagarDistt. Nizamabad A.P.

From :

Phone : 2639

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR - 146 001

Shiv Dev Rao Press, Manavata Mandir, Hoshiarpur (Pb.)